RNI Reg. No. HARHIN/2015/63352

पशुधन ज्ञान

वर्ष : 6 | अंक : 01 | जनवरी, 2020 | अर्धवार्षिक, हिसार | For Free Circulation only

प्रकाशक
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार – 125004 (हरियाणा)

प्रकाशक:

डॉ. जगतबीर फौगाट

निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार–125004 (हरियाणा)

सम्पादक:

डॉ. देवेन्द्र सिंह

सम्पादकीय मण्डल:

डॉ. वन्दना भनोट

डॉ. दिपिन चन्द्र यादव

डॉ. राजेश कुमार

प्रकाशक: डॉ. जगतबीर फौगाट, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के संपादन में **डोरेक्स ऑफसैट प्रिन्टर्स, हिसार** से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवा कर जनवरी, 2020 को प्रकाशित किया।

निर्देश: इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक तथा लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्राँडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

डॉ. गुरदयाल सिंह
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

हरियाणा कृषि प्रधान राज्य होने के साथ-साथ देश का अग्रणी पशुपालक राज्य भी है। कृषि एवं संलग्न क्षेत्रों में, पशुपालन क्षेत्र का आर्थिक विकास में योगदान सबसे ज्यादा है। आज के बदलते आर्थिक परिवेश में उच्च प्रोटीन युक्त आहार की मांग बढ़ रही है जिसे पूरा करने के लिए पशुपालन क्षेत्र पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। साथ ही साथ किसानों की आय दोगुनी करने में भी पशुपालन क्षेत्र की अहम भूमिका है। बढ़ती जनसंख्या के कारण कम होती कृषि क्षेत्र में पशुपालन को अत्याधिक प्रासंगिक बना दिया है।

हरियाणा राज्य देश के दुग्ध उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके साथ-साथ मांस उत्पादन, अंडा उत्पादन, मछली पालन व पशुपालन से जुड़े अन्य व्यवसायों में भी काफी वृद्धि हो रही है।

लुवास अपने वैज्ञानिक शोधों के द्वारा हमेशा से पशुओं की उत्पादक क्षमता बढ़ाने, उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाने और बीमारियों से बचाव जैसे विषयों पर शोध करते हुए नवीन जानकारियों एवं तकनीकों को पशुपालकों तक पहुँचाने का कार्य कर रहा है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'पशुधन ज्ञान' वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों एवं पशुपालकों को ज्ञान के माध्यम से जोड़ने का कार्य करती है। लुवास एवं अन्य क्षेत्रों में होने वाले पशुओं से संबंधित शोध कार्यों को विस्तार शिक्षा निदेशालय के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया जाता है। पशुधन ज्ञान पत्रिका के प्रकाशन के अवसर पर विस्तार शिक्षा निदेशक एवं पत्रिका के संपादक एवं वैज्ञानिकों को बधाई देता हूँ एवं आशा करता हूँ कि पत्रिका अपने उद्देश्य में सफल हो।

(गुरदयाल सिंह)

LALA LAJPAT RAI UNIVERSITY OF VETERINARY AND ANIMAL SCIENCES
HISAR 2010
"राष्ट्रीन्नयनं पशुवर्द्धनम्"

डॉ. जगतबीर फौगाट
निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय,
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव का महत्वपूर्ण अंग है। पशुपालन प्राचीन काल से ही हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। पशुधन हमें खाद्य उत्पादों के अलावा रोजगार तथा खेती के कार्यों के लिए ऊर्जा, खाद आदि उपलब्ध करवाते हैं। दुग्ध उत्पादन का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में गेहूं, धान और गन्ना जैसे प्रमुख पदार्थों से भी ज्यादा का हिस्सा है।

हरियाणा पूरे भारतवर्ष में दुग्ध उत्पादन में अग्रणी राज्यों में से एक है एवं प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता में पंजाब के बाद दूसरे स्थान पर है। राज्य में कुल दूध उत्पादन का लगभग 84 प्रतिशत हमें भैंसों एवं 15 प्रतिशत गायों से प्राप्त होता है। राज्य एवं देश की बढ़ती जनसंख्या, खाद्य सुरक्षा एवं संतुलित आहार के प्रति जागरूकता को ध्यान में रखते हुए पशुपालन क्षेत्र में रोजगार एवं वषद्धि की अपार संभावना है। ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं में डेयरी, मत्स्य पालन, सुअर पालन, मुर्गी पालन में बढ़ती रूचि एवं रोजगार के संभावनाओं को ध्यान में रखकर विस्तार शिक्षा निदेशालय पशुधन के विकास संबंधित नवीन जानकारियों एवं तकनीकों को पशुधन ज्ञान पत्रिका के माध्यम से पशुपालकों तक पहुंचाने का कार्य करते हैं। पशुधन में उच्चतर उत्पादों की प्राप्ति के लिए संतुलित आहार, नस्ल सुधार, बेहतर स्वास्थ्य तथा बिमारीयों का नवीनतम तकनीक द्वारा निदान और इलाज आदि ऐसे प्रांसगिक विषय हैं जिनकी जानकारी पशुपालकों तक समय–समय पर पहुंचाना अति आवश्यक है।

हरियाणा प्रदेश में पशुपालन के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है जिसमें प्रदेश के पशु वैज्ञानिकों और पशुपालक किसानों का बहुत बड़ा योगदान है। अब विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का वर्ष 2019 का द्वितीय अंक पशुधन व पशु उत्पाद के संबंधित सुचनाएं और ज्ञान पशुपालकों के घर–घर तक पहुंचाने का कार्य करेगा। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों और अधिकारियों का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ एवं पशुपालकों के लिए किए जाने वाले इस प्रयास की सराहना करता हूँ।

(जगतबीर फौगाट)

LALA LAJPAT RAI UNIVERSITY OF VETERINARY AND ANIMAL SCIENCES
HISAR 2010
"राष्ट्रीन्नयनं पशुवर्द्धनम्"

सम्पादक की कलम से...

पशुपालक भाइयों आज के समय में पशुपालन एक उद्यम का रूप ले चुका है। पशु उत्पादों जैसे दूध, दही, लस्सी आदि की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे में पशुपालक एक उद्यमी की तरह सोच रखकर पशुपालन व्यवसाय से अधिकत्तम लाभ ले सकते हैं। बदलते परिवेश में पशुओं मे नए–नए प्रकार के रोग एवं समस्याएं हो रही हैं। ऐसे में हमें पशुपालन संबंधी नवीन जानकारी एवं तकनीकों के बारे में अवगत होते रहना चाहिए।

पशुपालकों को सरल एवं आसान भाषा में यह जानकारी पशुधन पत्रिका के माध्यम से दी जा रही है। हमारा उद्देश्य है कि पशुपालक पारंपरिक ज्ञान के साथ–साथ वैज्ञानिक विधि की भी जानकारी रखें एवं जरूरत पड़ने पर उसका उपयोग करें।

पशुधन ज्ञान की पत्रिका में पशुपालन में लाभदायक सिद्ध होने वाली हाइड्रोपोनिक्स, ड्रमसाइलेज जैसे आधुनिक जानकारियों से साथ–साथ मिलावटी दूध की पहचान, विभिन्न मौसमों में पशुओं की देखभाल, घातक बिमारीयों से बचाव, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल आदि विषयों पर बहुत सी नवीन जानकारी दी गई है। पशुपालकों से निवेदन है कि इसमें बताई गई दवाइयों से संबंधित जानकारी का उपयोग करने से पहले पशु चिकित्सक की सलाह अवश्य लें।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका पशुपालकों एवं अन्य बुद्धिजीवियों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी। मैं इस पुस्तिका के नवीन अंक के प्रकाशन पर कुलपति लुवास, विस्तार शिक्षा निदेशक, वैज्ञानिकगण एवं सम्पादक मंडल के सदस्यों का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।

(देवेन्द्र सिंह)

LALA LAJPAT RAI UNIVERSITY OF VETERINARY AND ANIMAL SCIENCES
HISAR 2010
"राष्ट्रीन्नयनं पशुवर्द्धनम्"

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठांक
1.	गर्भावस्था के दौरान भैंसों में ध्यान देने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बिन्दू	ज्ञान सिंह एवं अमित कुमार	1
2.	हायड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन की आविष्कारी तकनीक	दीपिका कटारिया, ज्योति शुन्थवाल एवं देवेन्द्र सिंह	3
3.	पशुओं में मदकाल / गर्मी का प्रबंधन एवं कृत्रिम गर्भाधान	सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह	5
4.	साफ सुथरा दूध कैसे प्राप्त करें	संदीप, दीपक चोपड़ा एवं दिपिन चंद्र यादव	7
5.	पशु राशन में खनिज मिश्रण	दीपिका कटारिया एवं ज्योति शुन्थवाल	10
6.	पौष्टिक चारा 'साइलेज' द्वारा	सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह	12
7.	सामान्य अश्व आहार सम्बंधित आवश्यक जानकारी	वैशाली	15
8.	जैविक चारा उत्पादन	सतपाल, सुरेश कुमार एवं नीलम	16
9.	बकरी में ब्यांत प्रबन्धन	विकास सचान एवं शशिकांत गुप्ता	19
10.	डेयरी पशु आधुनिक कृषि प्रबंधन–एक वैज्ञानिक अनुप्रयोग	अजय सतबीगे एवं एन.ए. पाटिल	21
11.	हरियाणा में बाहरी परजीवी से होने वाले रोग और उनका नियंत्रण	हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता	23
12.	हरियाणा की बकरियों में परजीवी नियन्त्रण	हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता	25
13.	पशुओं तथा मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस के कारण, लक्षण, निदान एवं उपचार	अमित कुमार, ज्ञान सिंह एवं संदीप कुमार	26
14.	कंटाजियस इक्थाइमा–एक संक्रामक ऊँट रोग	दीपक, दिनेश गुलिया एवं दिपिन चन्द्र यादव	28
15.	हरियाणा के पशुओं में एम्फीस्टोमिएसिस (रूमन् फ्लूक) के रोग	हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता	30
16.	भारत में ताजे पानी की मछलियों के गैर–संक्रामक रोग	दीपक, सोनू यादव एवं दिपिन चन्द्र यादव	32
17.	हरियाणा के पशुओं में सिस्टोसोमिएसिस और फैसियोलिएसिस के रोग	हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता	34
18.	सुअर पालन में आहार प्रंबधन का महत्त्व	दीपक, सोनू यादव एवं दिपिन चन्द्र यादव	36
19.	ऊँट प्रजाति के दूध का महत्व एवं उपयोगिता	राजेन्द्र यादव, पंकज कुमार एवं अमित सांगवान	37
20.	ग्याबिन भैसों का रखरखाव	दीपिका कटारिया एवं ज्योति शुन्थवाल	39
21.	पशुओं में महामारी प्रकोप को नियंत्रित करने के लिए प्रारंभिक कदम	जसलीन कौर एवं गौरव चराया	41
22.	देश में अश्वों की विभिन्न नस्लें	वैशाली	43
23.	एनाप्लास्मोसिस घातक रिकेटसीएल रोग	जसलीन कौर एवं गौरव चराया	46
24.	नवजात बछड़ों की देखभाल	रोबिन, सुजॉय खन्ना एवं देवेन्द्र सिंह	48

गर्भावस्था के दौरान भैंसों में ध्यान देने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बिन्दू

ज्ञान सिंह[1] एवं अमित कुमार[2]

[1]शैक्षणिक पशु चिकित्सालय, [2]पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

भारत देश दुग्ध उत्पादन में अगर अग्रणी स्थान पर है तो इसका श्रेय देश की भैंसों एवं संकर नस्ल की गायों को जाता है। भैंसों में भी मुर्राह नस्ल का योगदान बाकी भैंसों की तुलना में अधिक है। जिसके कारण इसे काला सोना कहा जाता है। इस नस्ल तथा भैंसों के योगदान को यदि भविष्य में अगर बढ़ाना है तो किसान को भैंसों का रख–रखाव एवं प्रबंधन वैज्ञानिक तरीके से करना होगा जिससे की भविष्य में और ज्यादा सकारात्मक परिणाम देखे जा सके। ब्याने के नजदीक का जो समय होता है वह भैंसों के पालन का अभिन्न एवं निर्णायक समय होता है। यदि इस दौरान भैंसों की देखरेख न की जाये तो भैंस तथा कटड़े दोनों को ही जान का खतरा रहता है तथा ब्याने के पश्चात कम दुग्ध उत्पादन, गर्भ में संक्रमण इत्यादि समस्याएँ हो सकती है, इसीलिए भैंसों का ब्याने के पूर्व, दौरान एवं पश्चात् उनका ध्यान रखना बहुत ही अनिवार्य है। इस लेख में ब्याने के पूर्व, दौरान एवं पश्चात् भैंसों के रख–रखाव के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

भैंसों के ब्याने से पूर्व ध्यान देने योग्य बातें :

1. ग्याभिन भैंस को संतुलित व सम्पूर्ण आहार देना चाहिए जो कि गर्भ में पल रहे बच्चे तथा भैंस दोनों की आवश्यक तत्वों की कमी को पूरा कर सके। ग्याभिन भैंस को गर्भावस्था के अंतिम चरण में 2 से 3 किलो अतिरिक्त दाना देना चाहिए।
2. ग्याभिन भैंस को अंतिम चरण में दिन में कम से कम चार बार स्वच्छ व साफ जल पिलाना चाहिए।
3. ग्याभिन भैंस को ब्याने से एक सप्ताह पूर्व तक चराने व घूमाने के लिए बाहर ले जाना चाहिए। इससे पशुओं में बच्चेदानी के घूमने तथा फूल दिखाने की समस्या कम हो जाती है क्योंकि घूमने फिरने से बच्चेदानी मजबूत होती है।
4. ग्याभिन भैंस को अंतिम चरण में जोहड़ में नहीं ले जाना चाहिए क्योंकि इससे इनकी बच्चेदानी के घूमने की सम्भावना बढ़ जाती है, जिसके कारण भैंस तथा कटड़े दोनों की जान को खतरा रहता है।
5. ग्याभिन भैंस जिनमें फूल दिखने की समस्या होती है उनको ढलान में बिठाना चाहिए जिससे कि उनका पिछला हिस्सा आगे वाले हिस्से की अपेक्षा ऊँचा रहे। इन भैंसों को अंतिम चरण में आहार थोड़ा–थोड़ा करके देना चाहिए तथा कैल्शियम का नस में इंजेक्शन लगवाना चाहिए। जिन भैंसों में समस्या ज्यादा हो उनमें रोप ट्रस, छिक्की बांध कर इसे रोका जा सकता है।
6. यदि फिर भी पशु का शरीर बाहर आ जाये तो बाहर निकले हुए हिस्से को लाल दवाई के पानी से धोने के बाद साफ कपड़े में लपेट देना चाहिए और जल्दी से जल्दी पशु चिकित्सक को बुलाना चाहिए।
7. ग्याभिन पशुओं को अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए।
8. जो भैंसें प्रथम बार ब्याह रही है उन्हें दूध निकालते समय दुधारू भैंसों के साथ रखना चाहिए इससे वे दूध निकालने की प्रक्रिया से भली भांति अवगत हो जाती है।
9. जब भैंस के ब्याने का एक सप्ताह रह जाये तब पशु को बाहर ले जाना बंद कर देना चाहिए। पशु को इस समय ऐसा आहार देना चाहिए जिससे कब्ज की समस्या न हो।
10. ग्याभिन पशु की गर्भावस्था के अंतिम सप्ताह में दिन रात निगरानी रखनी चाहिए तथा किसी भी समस्या व दुविधा की स्थिति में पशु चिकित्सक का परामर्श लेना चाहिए।
11. पशु के नीचे साफ तथा सुखा बिस्तर होना चाहिए।

भैंसों के ब्याने के दौरान ध्यान देने योग्य बातें :

1. ब्याने के समय कुछ किसान मटंड़ी को फोड़ देते हैं जिससे कि कटड़े के बाहर आने की सामान्य भौतिक क्रिया में विलम्ब हो सकता है। अतः ऐसा कदापि नहीं

करना चाहिए।

2. कुछ किसान जैसे ही कटड़े का पाँव बाहर आता है उसे जल्दी हाथों में मिट्टी लगा के खींचना आरम्भ कर देते हैं जोकि एक गलत तरीका है क्योंकि इससे बच्चे के साधारण स्थिति में न होने पर कठिन प्रसव तथा बच्चेदानी में मिट्टी का संक्रमण जाने का अंदेशा बना रहता है।
3. ब्याने से पहले पशु बार बार उठता बैठता है।
4. सबसे पहले भैंस को ब्याने के समय एकांत में छोड़ देना चाहिए, किन्तु यदि कुछ सामान्य न लगे जैसे कि पशु का उठक बैठक करना, आहार पूरी तरह से छोड़ देना, रम्भाना तथा काफी प्रयासों के बावजूद भी कटड़े का बाहर ना आना इत्यादि ये सब खतरे के सूचक हैं, इसलिए ऐसी परिस्थितियों में बिना विलम्ब पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
5. कभी–कभी भैंस जब ब्याती है तो पीछे से काफी बदबू तथा मवाद आती है ऐसी परिस्थिति में बच्चा निश्चित रूप से मरा हुआ तथा सड़ चुका होता है। ऐसे में पशु चिकित्सक को बुला के जल्दी से जल्दी उसका इलाज करवाना चाहिए।
6. यदि पशु खड़े–खड़े ब्याह रहा है तो कटड़े को पकड़ लेना चाहिए जिससे कि वो सीधा जमीन पर न गिरे।
7. यदि भैंस जुड़वा बच्चों को जन्म दे तो भैंस में जेर न गिरने तथा बांझपन जैसी समस्याएँ होने की सम्भावना अधिक होती है।
8. जब भैंस नर व मादा जुड़वाँ बच्चों को जन्म देती है ऐसी परिस्थिति में मादा बांझ होती है व नर सामान्य होता है।
9. कभी–कभी कटड़ा तुरंत श्वास नहीं लेता है ऐसी परिस्थिति में उससे पिछले पावों से ऊपर उठा के उसकी छाती को रगड़ना व नासिका छिद्रों का श्लेश्मा साफ करना चाहिए।
10. ब्याने के तुरंत बाद कटड़े की नाल को 2 से 2.4 इंच छोड़कर कैंची से काटकर धागे से बांध कर बीटाडीन के घोल में डूबाना चाहिए।
11. बच्चे को खीस जन्म के आधे से एक घंटे के अंदर पीला देना चाहिए ऐसा करने से पशु की जेर भी जल्दी बाहर आ जाती है।
12. भैंस के पेट की संरचना मनुश्यों से अलग होती है किन्तु कुछ किसान इस तथ्य को बिना जाने भैंस को दूध तथा खीस पिला देते है। जिससे कि हानिकारक बैक्टीरिया इनके पेट में मौजूद लाभदायक बैक्टीरिया व प्रोटोजुआ को नुकसान पहुंचा कर इनका पाचन बिगाड़ देते हैं।
13. जेर को तुरंत पशु से दूर ले जाएँ क्योंकि अगर पशु इसको खा लेता है तो इससे अपापचय तथा फार्म पर बीमारी फैलने का खतरा रहता है।
14. यदि पशु ब्याने के 6 से 12 घंटे बाद तक जेर नहीं डालता है तो पशु चिकित्सक से इलाज करवाना चाहिए। यदि दवाइयों के देने के बाद भी पशु जेर न डाले तो पशु चिकित्सक से जेर को निकलवा कर पशु की बच्चेदानी में दवाई रखवा लेनी चाहिए।
15. पशु को ब्याने के बाद अच्छी गुणवत्ता की घास तथा गुड़ का घोल पिलाना चाहिए जिससे कि शरीर की ऊर्जा जोकि ब्याने के दौरान लगी है उसकी भरपाई हो सके।

भैंसों के ब्याने के बाद ध्यान देने योग्य बातें :

1. पशु का 40 ग्राम खनिज मिश्रण सुबह श्याम दाने में नमक के साथ देना चाहिए।
2. पशु का मैला छठा है या नहीं, उसका रंग कैसा है कहीं उसमें कोई दुर्गन्ध तो नहीं है इन सभी बातें का ध्यान रखना चाहिए। इन सब परिस्थितियों में आवश्यकता पड़ने पर पशु चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए, क्योंकि अगर मैले में दुर्गन्ध तथा वह पीले रंग का है तो ये सब बच्चेदानी में संक्रमण के परिचयक है। जिससे की भैंस के बार बार फिरने तथा आगे ग्याभिन न होने का खतरा रहता है।
3. प्रथम ब्यांत की भैंसों में मैला बहुत कम बनता है तथा मैले का अधिकांश हिस्सा बच्चेदानी के द्वारा सोख लिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में गभराने की आवश्यकता नहीं है यदि पशु के प्रसव में कोई दिक्कत न हुई हो।
4. भैंसों में मैला जल्दी व पूर्ण रूप से छटाने के लिए प्राकृतिक, गुलकंद तथा एलोपथिक दवाइयों जैसे की एक्सापार, युटेरोनिक का सहारा लिया जा सकता है।
5. दुग्ध ज्वर तथा कीटोसिस से बचाने के लिए कैल्शियम सिरप तथा बढ़िया हरा चारा व दाना देना चाहिए।
6. ब्याने के पश्चात् पशु को कम से कम 60 दिनों तक टीका नहीं धरवाना चाहिए क्योंकि इस दौरान पशु की बच्चेदानी वापिस उसी अवस्था में आ रही होती है।
7. पशुओं को नमीयुक्त हरा चारा नहीं देना चाहिए इससे इनमें अफारा होने का खतरा रहता है।
8. यदि पशु ब्याने के दो माह बाद भी नहीं बोलता है तो पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

हायड्रोपोनिक्स हरा चारा उत्पादन की अविष्कारी तकनीक

दीपिका कटारिया[1], ज्योति शुन्थवाल[2] एवं देवेन्द्र सिंह[2]

[1]पशु औषधि विज्ञान विभाग, [2]हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

हरियाणा के कई इलाकों में आमतौर पर सालभर पानी की कमी होती है। जैसे–जैसे इंसानी जनसंख्या हमारे देश में बढ़ रही है वैसे–वैसे खेती करने के लिए जमीन की कमी होती जा रही है। पशुपालन का क्षेत्र हमारे हरियाणा में तेजी से प्रगति कर रहा है, लेकिन उपजाऊ जमीन व पानी की कमी के कारण पशु आहार के लिए हरे चारे की कमी हो जाती है, जिससे पशु उत्पादन में कमी के कारण पशुपालक को नुकसान होता है। अच्छे पशुपालन के लिए जरूरी है कि पशु को साल भर हरा चारा उपलब्ध हो। इसको ध्यान में रखते हुए पशुपालन में हरे चारे के उत्पादन के लिए एक नई तकनीक का अविष्कार हुआ है, जिसे हाईड्रोपोनिक तकनीक कहते है। हाइड्रोपोनिक शब्द की उत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों 'हाइड्रो' तथा 'पोनोस से मिलकर हुई है। हाइड्रो का मतलब है पानी, जबकि पोनोस का अर्थ है कार्य। केवल पानी में या बालू अथवा कंकड़ों के बीच नियंत्रित जलवायु में बिना मिट्टी के पौधे उगाने की तकनीक को हाइड्रोपोनिक कहते हैं। इस तकनीक से विपरीत जलवायु परिस्थितियों में उन क्षेत्रों में भी पौधे उगाए जा सकते हैं, जहाँ जमीन की कमी है अथवा वहाँ की मिट्टी उपजाऊ नहीं है। हाइड्रोपोनिक्स में पौधों और चारे वाली फसलों को नियंत्रित परिस्थितियों में 15 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान पर लगभग 80 से 85 प्रतिशत आर्द्रता में उगाया जाता है। सामान्यतः पेड़–पौधे अपने आवश्यक पोषक तत्व जमीन से लेते हैं, लेकिन हाइड्रोपोनिक्स तकनीक में पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराने के लिये पानी में एक विशेष प्रकार का घोल डाला जाता है। इस घोल में पौधों की बढ़वार के लिये आवश्यक खनिज एवं पोषक तत्व मिलाए जाते हैं। पानी, कंकड़ों या बालू आदि में उगाए जाने वाले पौधों में इस घोल की महीने में दो–एक बार केवल कुछ बूँदें ही डाली जाती हैं। इस घोल में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, मैग्नीशियम, कैल्शियम, सल्फर, जिंक और आयरन

आदि तत्वों को एक खास अनुपात में मिलाया जाता है, ताकि पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते रहें।

हाइड्रोपोनिक्स के प्रमुख लाभः

1. इस तकनीक से बेहद कम खर्च में पशुओं के लिए हरा चारा उगाया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार 5 से 8 इंच ऊँचाई वाले पौधे के लिये प्रतिवर्ष एक रुपये से भी कम खर्च आता है।
2. इस तकनीक से तैयार पौध को जड़ के साथ एक मैट के रूप में पशु द्वारा खाया जा सकता है। अतः इसका कोई भी भाग व्यर्थ नहीं जाता, जबकि परंपरागत तरीके उगाये गए हरे चारे में काफी भाग व्यर्थ हो जाता है।
3. इस तकनीक से उगाये गया हरा चारा पशु के लिए

बहुत ही पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होता है।

4. यह तकनीक पानी की भारी बचत करती है। परंपरागत तरीके से उगाये गए हरे चहरे की अपेक्षा हाईड्रोपोनिक तकनीक से उगाये गए हरे चारे में 90 प्रतिशत से अधिक पानी की बचत हो जाती है।

5. चूँकि हाइड्रोपोनिक्स में पौधों और चारे वाली फसलों को नियंत्रित परिस्थितियों उगाये जाते हैं। अतः इस तकनीक से उगाये गए हरे चारे में किसी भी तरह का उर्वरक व अन्य प्रकार के रासायनिक तत्वों का इस्तेमाल नहीं किया जाता है और साथ ही साथ यह तकनीक पशु के लिए बहुत ही पौष्टिक आहार पैदा कर सकती है। अतः इस तकनीक से पौष्टिक चारे के साथ–साथ हम रसायन मुक्त चारा ले सकते हैं।

6. जमीन में उगाए जाने वाले पौधों की अपेक्षा इस तकनीक में बहुत कम स्थान की आवश्यकता होती है। हाईड्रोपोनिक तकनीक की विधि में कम जगह की आवश्यकता होती है, अतः इस तकनीक से सीमित क्षेत्र में, घर पर या छत पर भी हरे चार या सब्जियों का उत्पादन किया जा सकता है। इस तरह यह जमीन और सिंचाई प्रणाली के अतिरिक्त दबाव से छुटकारा दिलाने में सहायक होती है।

7. मक्के से तैयार किए गए हाइड्रोपोनिक्स चारे से संबंधित प्रयोगों में पाया गया है कि परंपरागत हरे चारे में क्रूड प्रोटीन 10.70 प्रतिशत होती है, जबकि हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे में क्रूड प्रोटीन 13.6 प्रतिशत होती है। लेकिन परंपरागत हरे चारे की अपेक्षा हाइड्रपोनिक्स हरे चारे में क्रूड फाइबर कम होता है। हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे में अधिक ऊर्जा, विटामिन और अधिक दूध का उत्पादन होता है और उनकी प्रजनन क्षमता में भी सुधार होता है।

हाइड्रोपोनिक्स तकनीक की चुनौतियाँ

सवाल यह उठता है कि जब हाइड्रोपोनिक्स के इतने सारे लाभ हो सकते हैं तो यह तकनीक इतनी प्रचलित क्यों नहीं हो पाई? दरअसल, इस तकनीक के प्रचलित होने के रास्ते में कई कठिनाइयाँ और चुनौतियाँ भी हैं, जैसे कि–

1. इस तकनीक को स्थापित करने में शुरूआत में आने वाला खर्च चुनौती होता है। परंपरागत विधि की अपेक्षा इस तकनीक में शुरूआत में थोड़ा अधिक खर्चा आता है, हालाँकि ये तकनीक बाद में काफी सस्ती पड़ती है लेकिन शुरू में किसान को थोड़ी परेशानी हो सकती है।

2. इस विधि में पानी का बहाव सुचारू रूप से होता है साथ ही ये पानी पुनः इस्तेमाल में लाया जा सकता है, उसके लिए लगातार विद्युत आपूर्ति की जरूरत पड़ती है अतः इस तकनीक में सुचारू रूप से विद्युत आपूर्ति एक बड़ी चुनौती होती है। हालाँकि इस तकनीक में बहुत कम बिजली की खपत होती है।

3. यह तकनीक सुनने में बहुत ही जटिल व वैज्ञानिक लगती है जिससे पशुपालक इसे अपनाने में शुरू में कतराते है, इसलिए जरूरी है कि पशुपालक अपनी मनोवृति को बदले और इस लाभकारी तकनीक को ज्यादा से ज्यादा अपनायें।

4. हाईड्रोपोनिक तकनीक के इस्तेमाल में आने वाली सभी चीजें जैसे उपकरण, ट्रे, बीज, पानी सभी साफ़ व स्वच्छ होने चाहिए ताकि किसी भी तरह का संक्रमण ना हो सके इसलिए पशुपालक को रोजाना उपकरण की सफाई रखनी पड़ेगी जो इस तकनीक के लिए अत्यधिक जरूरी है।

5. इस तकनीक में पौधों के उगने के लिए लगातार आवश्यक खनिज और पोषक तत्व सही समय पर सही मात्रा में मिलते रहना बहुत जरूरी है, अतः हाईड्रोपोनिक उपकरण का सुचारू रूप से चलना बहुत जरूरी हो जाता है।

पशुओं में मदकाल/गर्मी का प्रबंधन एवं कृत्रिम गर्भाधान

सज्जन सिंह[1] एवं दलजीत सिंह[2]

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, [2]पशु प्रजनन विभाग,

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

मदकाल/गर्मी

मदकाल/गर्मी समय की वह अवधि है जब एक गाय/भैंस या बछिया यौन ग्रहणशील होती है। यह गाय एवं भैंस में 21 दिनों के अंतराल पर होता है। मदकाल/गर्मी की सही–सही पहचान एवं सही समय पर गर्भाधान जानवरों की प्रजनन क्षमता को बढ़ाता है। कृत्रिम गर्भाधान और भ्रूण प्रत्यारोपण कार्यक्रम, सही मदकाल/गर्मी के पहचान पर अत्याधिक निर्भर करता है।

मदकाल/गर्मी के लक्षण एवं पहचान :

- गाय/भैंस रम्भाने लगती है।
- गाय/भैंस मदकाल/गर्मी में आने पर बैचेन हो जाती है एवं खुट्टे के चक्कर लगाती रहती है।
- गाय/भैंस बार–बार पेशाब करती है।
- योनि लाल रंग की तथा सूज जाती है।
- प्रजनन द्वार से लसीला, चमकीला एवं पारदर्शक पदार्थ का स्त्राव होता है।
- गाय/भैंस की भूख में कमी हो जाती है।
- गर्मी/मदकाल में आने पर पशु आमतौर पर छोटे समूहों में एकत्र हो जाते है।
- मादा पशु दूसरे पशुओं को अपने ऊपर चढ़ने की सहमति प्रदर्शित करती है।
- पूँछ का ऊपरी सिरा उठा हुआ नजर आता है।
- गर्मी के उपर्युक्त लक्षण लगभग एक से दो दिन तक दिखाई देते है।
- थनों में दूध भरा नजर आता है।
- जब पशु दूसरे जानवरों के सामने जाकर खड़ा होता है एवं उसे अपने उपर चढ़ने देता है तो यह गर्भाधान का सबसे उपयुक्त समय होता है।

कृत्रिम गर्भाधान

कृत्रिम गर्भाधान वह तकनीक है जिसमें नर से वीर्य एकत्रित किया जाता है एवं शुक्राणु युक्त वीर्य मादा के गर्भाशय ग्रीवा या गर्भाशय में यांत्रिक तरीकों द्वारा रखा जाता है। कृत्रिम गर्भाधान, पशुधन सुधार के लिये एक शक्तिशाली नियोजित तरीका है। इस विधि द्वारा बेहतर गुणवत्ता वाले सांड का जर्मप्लाज्म (वीर्य) दूर–दूर स्थानों तक प्रभावी ढंग से इस्तेमाल कर सकते हैं। कृत्रिम गर्भाधान द्वारा प्रजनन सम्बन्धी रोगों के फैलने से काफी हद तक निजात पायी जा सकती है।

कृत्रिम गर्भधारण में सावधानियाँ :

- गाय/भैंस को ठंडे व हवादार स्थान पर रखें।
- पिछले भाग को ठंडा रखने के लिए पुट्टों पर मुल्तानी मिट्टी का लेप करें।
- ऋतु–काल प्रारम्भ होने के समय का सही ज्ञान रखें।
- कृत्रिम गर्भाधान प्रशिक्षित/अनुभवी व्यक्ति से ही कराये।
- गाय/भैंस का गर्भाधान उसके गर्मी में आने के 8–12 घंटे बाद तक अवश्य करा लेना चाहिए।
- गर्भाधान के पश्चात् पशु को थोड़ा चलाना चाहिए ताकि पशु पीछे की ओर जोर ना लगा सके व जनन नालिका में संचित वीर्य को बाहर ना फेंक सकें।
- कृत्रिम गर्भाधान के बाद ग्रीष्म ऋतु में पषु को तालाब में नहलाना चाहिए।

सुझाव :

- गर्मी में आने के 8–12 घंटे बाद ही कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए।
- यदि गाय/भैंस गर्भित नहीं हुई है तो वह 21 दिन बाद पुनः मदकाल/गर्मी में आयेगी।
- अतः 21 दिन बाद गर्मी के लक्षणों का फिर से निरीक्षण करना चाहिए।
- सुबह एवं शाम के समय विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इस समय गर्मी के लक्षण तीव्र होते हैं।

- गर्भित पशु के आवास स्थान की सतह को ढीली न रखें और जहां तक हो सके उसे अन्य पशु से अलग रखें।
- गर्भित पशु के पोषण/खुराक की मात्रा पर नियमित ध्यान देना चाहिए अगर पशु किसी कारणवश उचित पोषण/खुराक आदि ग्रहण नहीं कर रही, तो उसको अनदेखा न करें। उसकी कुशल पशु चिकित्सक के पास ले जाकर जाँच एवं इलाज करवायें।

कृत्रिम गर्भाधान के लाभ :

- यह एक सस्ती व सरल तकनीक है।
- एक सांड से अनेक मादा पशुओं को गर्भित कराया जा सकता है।
- पशुओं के नस्ल में तेजी से सुधार होता है।
- कृत्रिम गर्भाधान से प्रजनन संबंधी बिमारियों को फैलने से रोका जा सकता है।
- जब गाय/भैंस मदकाल/गर्मी में आती है तब सांड ढूँढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती।
- इस तकनीक को अपनाने से छोटे किसानों एवं पशुपालकों को सांड रखने की आवश्यकता नहीं होती है, जिससे अनावश्यक होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है।
- कृत्रिम गर्भाधान को अपनाकर नर तथा मादा पशुओं के भार तथा आकार अन्तर द्वारा उत्पन्न होने वाली समस्या से बचा जा सकता है।
- दुनिया के किसी भी हिस्से में उपलब्ध उत्तम गुणों वाले सांड के वीर्य को किसी भी देष वातावरण परिस्थितियों में प्रयोग कर सकते हैं।
- इस विधि द्वारा प्रौढ़ तथा घायल साँड के वीर्य को इकट्ठा कर प्रयोग किया जा सकता है जो कि प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा सम्भव नहीं है।

कृत्रिम गर्भाधान की सीमायें:

- कृत्रिम गर्भाधान के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति तथा विशेष उपकरणों की आवश्यकता होती है।
- इस प्रक्रिया में प्राकृतिक विधि के मुकाबले समय ज्यादा लगता है।
- कृत्रिम गर्भाधान सम्बन्धी कार्य में लगे व्यक्ति को पशु प्रजनन अंगों का ज्ञान होना आवश्यक है।
- कृत्रिम गर्भाधान के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले सांड का चयन अनुभवी चयनकर्ता द्वारा सभी बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

भारतीय परिवेश में कृत्रिम गर्भाधान की सीमाएं :

- भारत के लोग कुछ धार्मिक कारणों की वजह से ऐसे सांडों का बंधीकरण नहीं करते जिनको गर्भाधान के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
- तकनीक की अज्ञानता के कारण कुछ लोग कहते हैं कि कृत्रिम गर्भाधान कराने से पशुओं में कमजोरी आ जाती है।
- वातावरण की विपरीत परिस्थितियाँ, वीर्य के सरंक्षण तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने में बाधा उत्पन्न करती है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

साफ–सुथरा दूध कैसे प्राप्त करें

संदीप, दीपक चोपड़ा एवं दिपिन चंद्र यादव

पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एंव पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

- दूध मानव जाति के लिए प्रकृति का सबसे अदभुत उपहार है जोकि अपने आप में एक पूर्ण आहार अथवा संपूर्ण भोजन है। दूध को हम एक स्वस्थ जानवर के स्तन स्त्राव से प्राप्त करते हैं।
- दूध की उच्च पोषण सामग्री होने के कारण इसमें बहुत से असंख्य सूक्ष्मजीवों का विकास का माध्यम बन जाता है। खराब करने वाले रोगाणुओं के कारण दूध की उत्पादकता तथा गुणवत्ता बिगड़ जाती है जिससे किसानों तथा जो लोग दूध का उपयोग करते है उनको आर्थिक, शारीरिक नुकसान होने का खतरा होता है।
- दूषित दूध से दूध जनित संक्रमण अथवा बीमारी जैसे टाइफाइड, फूड पॉइजनिंग और तपेदिक आदि के होने का खतरा होता है। एंटीबायोटिक्स तथा कीटनाशक कृषि खाद्य प्रणाली ने पशुओं के शरीर, दिमाग और प्रजनन क्षमता को नुकसान पहुँचाया है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य को भी इन दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है।
- स्वस्थ दूध 'स्वस्थ पशुओं से प्राप्त कच्चे दूध को दिखाता है। स्वच्छ दूध का उत्पादन स्वच्छता की स्थिति के तहत किया जाता है। स्वस्थ दूध में बहुत कम संख्या में हानिकारक बैक्टीरिया होते हैं। स्वच्छ दूध खतरनाक रासायनिक अवशेषों, बैक्टीरिया, फफूँद, रोगाणु और किसी भी गंदगी से मुक्त होना चाहिए।
- स्वस्थ दूध उत्पादन में निवारक प्रथाओं का एक सेल शामिल है जो पशु को स्वस्थ रखने में मदद करता है तथा मेस्टाइटस जैसी बीमारियों से मुक्त रखने में मदद करता है।

स्वस्थ दूध उत्पादन में समस्याएं–

1. भारत में कम उत्पादन वाले जानवरों का रख–रखाव सही ढंग से नहीं होगा।

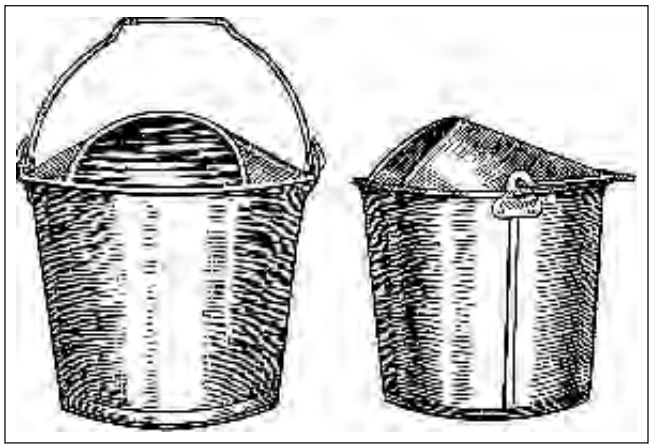

2. सड़कों की खराब स्थिति और अनियमित बिजली आपूर्ति अच्छी गुणवत्ता वाले कच्चे दूध की खरीद और आपूर्ति के लिए एक बड़ी चुनौती है।
3. दूध संग्रह प्रणाली का अच्छी तरह विकसित नहीं होना।
4. स्वच्छ दूध का सीमित बाजार।
5. डेयरी उद्योग में सीमित निवेश।
6. परिवहन, प्रसंस्करण और वितरण का खराब बुनियादी ढांचा।
7. पशु के स्वास्थय पर ध्यान नहीं देना।
8. दूध उत्पादन में मौसमी उतार–चढ़ाव।
9. दूध की गुणवत्ता में असामनता।
10. संग्रह बिंदु से गंतव्य तक कोल्ड चेन का रखरखाव।
11. वैज्ञानिक डेयरी फार्मिंग, स्वच्छ दूध उत्पादन और मूल्य श्रृंखला की कमी।

- दूध दोहने का काम औरतों तथा पुरुषों द्वारा किया जाता है इससे दूध दोहने वालों की साफ–सफाई तथा उनकी आदतों का दूध की स्वच्छता पर बहुत प्रभाव पड़ता है।
- दूध दोहने में स्वस्थ एवं अच्छी आदतों के लोगों को ही

लगाना चाहिए। उनके कपड़े साफ, नाखुन कटे हुए, सिर टोपी से ढ़का हुआ होना चाहिए तथा कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व हाथ रोगाणुनाशक घोल से धोये जाने चाहिए।

- बर्तन एवं उनकी साफ–सफाई–दूध के उपयोग में आने वाले बर्तन स्टेनलेस स्टील के होने चाहिए जो जंग रहित धातु है।
- दूध के बर्तनों का उपयोग होने के बाद गर्म पानी से, फिर डिटरजैन्ट से फिर गर्म पानी से तथा ठंडे पानी के बाद 2 मिनट तक भाप देकर जीवाणु रहित करके सुखा लेना चाहिए।
- अगर भाप उपलब्ध न हो तो पाँच मिनट तक बर्तन को उबलते पानी में या क्लोरीन विलयन में डुबाकर निकालें।
- खाद्य पदार्थ एवं खिलाने की विधि– चारे में हानिकारक तथा तेज गन्ध युक्त खरपतवार नहीं होना चाहिए। भूसा या धूल युक्त चारा दूध निकालने के बाद ही खिलाएं।
- पानी व उसकी गुणवत्ता– पशुओं को पिलाने तथा बर्तनों की साफ–सफाई में शुद्ध एवं स्वच्छ जल का प्रयोग करें। पानी उपलब्ध के साथ–साथ सुरक्षित होना चाहिए।
- दोहन का ढंग– चुटकी विधि तथा मुट्ठी में अंगूठा दवा कर दूध दुहने की विधि पशु के लिए कष्टकारी है जिससे उत्पादन घटता है। पूर्व हस्त विधि समस्त थन पर समान दबाव पड़ता है जोकि सर्वोतम है। अपने हाथों पर झाग या पानी न लगायें। हाथों को धोकर तथा पोंछकर दूध निकाले। प्रारम्भ में 3–4 धारें जमीन पर गिरा दें क्योंकि इसमें दूध में जीवाणुओं की संख्या सर्वाधिक होती है।

स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए उपाय :

1. **पशु स्वास्थय :** स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए दुधारू पशु का निरोग और स्वस्थ होना आवश्यक है। पशुओं में जैसे क्षय (टयुबरक्लोसीस), आन्तरिक ज्वर (टाईफाइड), चेचक, खुरपका–मुँह रोग, ब्रूसेलोसीस ऐसे बहुत से रोग है जोकि दूध के माध्यम से मनुष्य में फैलते हैं। अतः केवल निरोग और स्वस्थ पशु से ही दूध का उपयोग करना चाहिए।
   - रोगी पशु के दूध को अलग रखना चाहिए तथा इसे जीवाणु रहित बनाने के बाद ही उपयोग करना चाहिए।
   - पशु को दुहने से पहले उसकी तथा पशुशाला को किसी अच्छे केमिकल से कीटाणुमुक्त कर लेना चाहिए।
2. **पशु की साफ–सफाई :** पशुओं को ब्रश, कपड़े की

सहायता से कम से कम एक घंटे पहले साफ कर लेना चाहिए। पिछले भाग को पानी से धोना चाहिए। ल्योटी पर यदि कोई बाल या अन्य तरह की गंदगी है तो उसे साफ तौलिये से साफ करना चाहिए।

- दोहने से पूर्व ल्योटी को कीटाणुनाशक घोल से साफ करना चाहिए।

3. **पशुशाला की सफाई :** दुग्धशाला में सीमेंट तथा कंक्रीट का फर्श अच्छा रहता है। जिसे धोकर सुखाया जा सकता है। फर्श नाली की तरफ से उचित ढलान पर हो। जिससे पानी न रूके तथा धोने तथा सुखाने में सुविधा रहे।

- दुग्धशाला को प्रतिदिन दो बार धोकर साफ करें। दूध दोहन से पूर्व गोबर को हटा दें। मक्खी–मच्छर से छुटकारा पाने के लिए गोशाला में डी.डी.टी. का छिड़काव करें।

4. **दूध निकालने वाले की साफ–सफाई :** भारत में पशुओं की कम दुग्ध उत्पादकता तथा प्रतिफार्म पशुओं की कम संख्या के कारण दूध दुहने में मशीनों का प्रयोग कम होता है।

- **दूध का संग्रहण :** स्वच्छतापूर्वक निकाले गये दूध में जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए दूध को निकालते ही अवशीतन तापमान 40 से. पर ठण्डा कर के रख दें।
- **दूध का निरोगीकरण पाश्चुराईज–** स्वच्छ दूध को उपयोग के लिए सुरक्षित बनाने के लिए (निरोगीकरण पाश्चुराईज) की आवश्यकता होती है। निरोगीकरण में दूध को निश्चित तापक्रम पर निश्चित समय के लिए गर्म करते हैं। ताकि दूध में उपस्थित रोग नष्ट हो जायें। निरोगीकरण के तुरन्त बाद दूध को लगभग 4–4.50 से. ताप पर ठण्डा कर के रखें। निरोगीकरण के बाद दूध का हाथ से स्पर्श न होने दें।
- **दूध का वितरण–** दूध को निरोगीकरण के बाद अधिक समय तक संग्रहित नहीं रखना चाहिए यथा शीघ्र दूध का वितरण उपभोक्ताओं में कर दें। देश में उत्पादक के पास दूध ठंडा करने के सुविधा नहीं है। अतः यदि रखना पड़े तो दूध को उत्पादन के 3–4 घंटे के समय उपरान्त उबाल कर रखें।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

पशु राशन में खनिज मिश्रण

दीपिका कटारिया[1] एवं ज्योति शुन्थवाल[2]

[1]पशु औषधि विज्ञान विभाग, [2]हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशु राशन में खनिज मिश्रण का बहुत महत्त्व है। किसान पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञात हुए पारंपरिक ज्ञान के आधार पर या स्थानीय क्षेत्र में उपलब्ध एक या दो ही खाद्य पदार्थ का इस्तेमाल करते है जिससे पशुओं में अमूमन खनिजों की कमी हो जाती है। डेयरी पशुओं में खासकर अधिक दूध देने वाले पशुओं के शरीर में खनिजों की कमी रहती है। शरीर में खनिजों की कमी के कारण पशु के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है और पशु में नाना प्रकार के रोग एवं समस्यायें उत्पन्न हो सकती है इससे पशु की प्रजनन क्षमता भी प्रभावित होती है और पशु दूध भी कम देता है। इसका प्रमुख कारण पशु के शरीर में की उचित मात्र में खनिजों की आपूर्ति न होना है। फसल अवशेष ही हमारे पशुओं में मुख्य आहार हैं। फसल अवशेषों में कार्बोहाईड्रेटस ही पर्याप्त मात्रा में होते हैं परन्तु नाइट्रोजन तथा खनिज की मात्रा कम होती है। लिग्लिन अधिक होने के कारण पशु इनका पूरी तरह उपयोग नहीं कर पाता है। डेरी पशुओं के चारे और आहार में दुग्ध उत्पादन और प्रजनन के लिए जरूरी सभी खनिज शामिल नहीं होते। चारे और आहार में खनिजों का स्तर क्षेत्र दर क्षेत्र में बदलता रहता है। खनिज तत्व बहुत ही थोड़ी मात्रा में प्रत्येक प्रकार के चारे–दाने तथा शरीर में पाये जाते हैं। इसीलिए इनकी आवश्यकता पशु के आहार में होती है।

खनिज तत्व

प्रकृति में लगभग 40 प्रकार के खनिज जीव–जन्तुओं के शरीर में पाये जाते हैं, लेकिन इसमें से कुछ ही अत्यन्त उपयोगी है। शरीर की आवश्यकता के अनुसार खनिजों को दो भाग में बाटा गया है।

1. एक तो जो अधिक मात्रा में पशु के लिये आवश्यक है। इनको प्रमुख खनित कहते हैं। इनकी मात्रा को ग्राम में या प्रतिशत में व्यक्त करते है, जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, पोटैशियम, सोडियम, सल्फर, मैग्निशियम तथा क्लोरीन।
2. दूसरे वो जो शरीर हेतु बहुत कम मात्रा में आवश्यक होते है, ऐसे खनिजों को सूक्ष्म या विरलखनिज कहते है। इनको पी.पी.पी. में व्यक्त करते हैं, जैसे लोहा, जिंक, कोबाल्ट, आयोडीन, कापर, मैगनीज, मोलीब्डेनम, लोरिन, सिलिकान, सेलेनियम, वेमियम,निकल, टिन एवं वेनाडियम।

कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, कॉपर, कोबाल्ट, मैग्निशियम आयोडीन एवं जिंक आदि खनिज लवण मुख्यतः रूप से पशुओं की प्रजनन क्षमता को प्रभावित करते है। इनकी कमी से पशुओं में गर्भ सम्भदित बीमारियां होती है जैसी की मदहीनता एवं गर्भधारण न करने की समस्या। आहार में कैल्शियम की कमी से अंडाणु पर प्रभाव पड़ता है, तथा पशुओं के आहार में फास्फोरस के कमी से पशुओं में अण्डोतत्सर्ग कम होता है, तथा पशु का गर्भपात हो जाता है। अन्य खनिज लवण भी पशुओं में अण्डोत्पादन, शुवणुत्पादन, निषेचन, श्रारण के विकास एवं बच्चा पैदा होने तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मुर्गियों में भी अच्छी गुणवत्ता वाले अण्डे के उत्पादन हेतु आहार में कैल्शियम सहित अन्य खनिज लवण अति आवश्यक है। अतः पशुओं में खनिज मिश्रण शरीर के रखरखाव, विकास, प्रजनन और दूध उत्पादन के लिए आवश्यक है। खनिज मिश्रण सभी पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक होते हैं।

खनिज मिश्रण का महत्त्व निम्नलिखित है–

- हड्डियों व जोडों की मजबूती होती है।
- पशुओं को दस्त लगने से बचाता है।
- भूख की कमी नहीं होने देता।
- शरीर में पानी की मात्रा ठीक रखता है।
- पाचक प्रोटीन व ऊर्जा को बनाए रखता है।
- लकडी, मिट्टी, पत्थर व हड्डियां इत्यादि को चबाने व खाने की आदत से रोकता है।
- शरीर में कई प्राणजीवी कार्यों का नियंत्रण परस्पर

क्रिया द्वारा होता है।

- बछडों में विकास दर में सुधार में मदद करता है।
- पशुओं में दूध उत्पादन बढजाता है।
- प्रजनन क्षमता में सुधार करता है।
- अंतर प्रजनन अवधि कम कर देता है।
- प्रतिरक्षा में सुधार करता है।
- लौह लवण लाल रक्त कणों में हीमोग्लोबिन बनाने में आवश्यक होता है, जिसके कारण रक्त में आक्सीजन लेने की शक्ति पैदा होती है।
- दूध बुखार, केटोसिस, हेमतुरिया, चयापचय जैसे रोगों से बचाता है।

खिलासिफारिश

- बछड़ों– 20–25 ग्राम दैनिक
- वयस्क पशु 50 ग्राम पशु दैनिक प्रति
- दूध देने वाले पशु 100–200 ग्राम दैनिक (दूध उत्पादन के अनुसार)
- खनिज मिश्रण के साथ या 15–20 ग्राम आम नमक के मिश्रण से खिलाया जा सकता है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. नि:शुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

पौष्टिक चारा 'साईलेज' द्वारा

सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

दूध उत्पादन पर होने वाले कुल खर्चे में पशुओं के आहार पर काफी खर्च आता है। दूध उत्पादन ज्यादातर हरे चारे की उपलब्धि पर निर्भर करता है परंतु हरा चारा सारे साल नहीं मिलता। चारे के अभाव वाले महीनों में दूध का उत्पादन–मूल्य भी बहुत बढ़ जाता है। ऐसे अभाव वाले महीनों में पशुओं को खिलाने के लिए हरे चारे को साईलेज में परिरक्षित कर लेना चाहिए।

साईलेज

हरे चारे को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए तथा कमी के दिनों में जानवरों को खिलाने के लिए ''साइलेज'' यानि चारे का अचार बनाते हैं जो चारे के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। अच्छी तरह तैयार किया गया साइलेज खाने व पचने में आसान होता है। साइलेज का जानवरों पर कोई बुरा प्रभाव भी नहीं पड़ता।

लाभ

साईलेज से कम खर्चे पर बढ़िया किस्म का भोजन मिल जाता है। जिस मौसम में फसल काट कर भूसा न बनाया जा सके, साईलेज बना कर रख सकते हैं। मक्का तथा बाजरा जैसे मोटे डण्ठलों वाले पौधों को बिना किसी बर्बादी के साईलेज के रूप में पषु खा लेते हैं। खरपतवार वाले पौधों का भी अच्छा साईलेज बन सकता है। साईलेज भूसे के मुकाबले में कम जगह घेरता है।

साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त चारे

चारा न अधिक सूखा हो और न ही उसमें जल की अधिक मात्रा हो। अधिक सूखे चारे का साईलेज भली प्रकार बंधता नहीं। बीच में हवा रह जाने से फफूंदी लग जाएगी। यदि पानी की मात्रा अधिक है तो साईलेज सड़ जाएगा। चारे में 8 से 10 प्रतिशत तक घुलनशील कार्बोहाइड्रेट्स होने चाहिएं। हरे चारे वाली फसलें–जैसे मक्का, ज्वार, सूडान घास, बाजरा, जई आदि साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त हैं। दाल वाली फसलें, जैसे लूसर्न, बरसीम तथा लोबिया साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं लेकिन कुछ उपचार करने के बाद इनको भी अच्छे साईलेज में बदला जा सकता है।

अच्छा या बुरा साईलेज इस बात पर निर्भर करता है कि चारे को किस अवस्था पर काटा गया है। चारे वाले पौधे अधिकतर उस समय काटने चाहिएं जब उनका ऊपरी भाग निकल आया हो लेकिन पौधे ने फैलना आरंभ न किया हो। लूसर्न को फूल निकलने की आरम्भिक स्थिति में काट लेना चाहिए, ग्वार और लोबिया को फलियों के भर जाने के तुरंत बाद काटना चाहिए तथा जई, मक्की व ज्वार को प्रारंभिक या बीच की अवस्था में काट लेना चाहिए।

फसल की भौतिक अवस्था भी साईलेज के गुणों को प्रभावित करती है। सूखे चारे को हरे चारे की अपेक्षा सुरक्षित रखना अच्छा है। साईलेज बनाने के समय चारे में शुश्क पदार्थ 30 से 40 प्रतिशत तक रखना चाहिए।

साईलेज तैयार करने के लिए गड्ढे

साईलेज के लिए बनाए गड्ढे के चारों ओर की दीवारें वायुरोधी, कोने गोल व गहराई काफी होनी चाहिए। पक्के गड्ढे में पोषक तत्वों का नुकसान कम होता है यदि गड्ढे कच्चा हो तो दीवारों में सुराखों को भरने के लिए किसी न किसी प्रकार की तह आवश्यक है।

गड्ढे का आकार :

आकार इन बातों पर निर्भर करता है– पशुओं की संख्या, पशुओं को चारा देने का समय (दिन) पशुओं की दैनिक आवश्यकता व चारे की उपलब्धता।

साईलेज बनाने की मात्रा लगभग 15 किलोग्राम प्रति घन फुट होती है। क्षमता के अनुसार गड्ढे का आकार आगे दिए गए ढंग से रखें।

क्षमता (क्विंटल)	लंबाई (फुट)	चौड़ाई (फुट)	गहराई (फुट)
22.5	5	5	6
45.0	10	5	6
67.5	15	5	6
90.0	20	5	6
112.5	25	5	6

भराई : भरने से पहले कच्चे गड्ढे की दीवारें व धरातल को पूरी तरह गोबर से लीप देना चाहिए। मिट्टी व हरे चारे के सीधे संपर्क को रोकने के लिए गेहूँ का भूसा चारों तरफ व धरातल पर लगा देना चाहिए। हरा चारा परतों में भरें व प्रत्येक परत को अच्छी तरह दबाएं। ऊपर के भाग में, विशेषकर दीवारों के आसपास, साईलेज बनाने की सामग्री को दबा दें। गड्ढे को दो–तीन फुट ऊंचा भरें ताकि ऊपर का भाग दबने के बाद भी जमीन से ऊंचा रहे।

मुहरबंदी : साईलेज को हवा से बचाने के लिए मिट्टी, गोबर, चूने या बुरादे से मुहरबंदी करें। मुहरबंदी वाली सामग्री की परत काफी मोटी होनी चाहिए (5–6 इंच) तथा गड्ढे को भरने के तुरंत बाद मुहरबंदी कर दें। साईलेज के नीचे बैठने पर साईलेज और मुहरबंदी की सामग्री को कभी–कभी दबाते रहें। सतह के नुकसान को रोकने के लिए प्लास्टिक की चादर काफी उपयोगी रहती है। चादर के किनारे अच्छी तरह से मिट्टी से ढक देने चाहिए ताकि हवा चादर के अंदर न घुस सके।

दाल वाली फसलों से साईलेज

दालों वाली फसलों में चीनी की कमी और आर्द्रता व प्रोटीन की अधिकता होती है इसलिए इनका स्वतंत्र रूप से साईलेज नहीं बनता। निम्नलिखित ढंग से इनका भी साईलेज बनाया जा सकता है।

सुखाना : इन फसलों को 35 से 45 प्रतिशत शुष्क पदार्थ तक सुखा लेने से अच्छी किस्म का साईलेज बन सकता है। इसके लिए इन्हें एक से डेढ़ दिन तक सुखाएं। इससे पानी की मात्रा कम और चीनी की मात्रा अधिक हो जाती है।

दूसरे चारों के साथ मिलाना : मक्का, ज्वार, जई आदि चारों में घुलनशील चीनी की मात्रा अधिक होती है। दालों वाली फसलों को इनके साथ (1:1) मिलाने के बाद पर्याप्त चीनी प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार का साईलेज प्रोटीन तथा ऊर्जा से भी संपन्न होता है। साईलेज बनाने से पहले चारे के छोटे–छोटे टुकड़े काट लें।

भूसे के साथ मिलाना : दाल वाली फसलों के साथ गेहूँ का भूसा (3:1) मिलाने से शुश्क पदार्थ की मात्रा 30–40 प्रतिशत हो जाती है। इससे चारा ही सुरक्षित नहीं होता वरन् गेहूँ के भूसे की उपयोगिता भी बढ़ जाती है।

साईलेज निकालना

साईलेज के गड्ढे गड्ढे को 50–60 दिन बाद या जब भी जरूरत हो, खोल लेना चाहिए। खोलने के बाद यह आवश्यक है कि एक गड्ढे का साईलेज पूरा खिला दें। रोजाना 2–4 इंच की परत हटा देनी चाहिए।

पशुओं को दिए जाने वाले साईलेज की मात्रा इस प्रकार रखें :

पशु	साईलेज की मात्रा (प्रतिदिन प्रति पशु (किलो)
दूध देने वाली गाय	25–30
बैल	20–25
गाभिन गाय	15–20
बछड़ा	10–15
भैंस	30–35

खराब साईलेज नहीं खिलाना चाहिए। जितना जरूरी हो उतना ही साईलेज निकालना चाहिए। यद्यपि साईलेज तैयार करने में कुछ पौष्टिक तत्वों की क्षति अवश्य हाती है, फिर भी साईलेज खिलाना सस्ता व अच्छा रहता है। इससे दाने की बचत भी होती है।

ड्रम साईलेज तैयार करने की विधि तथा सावधानियाँ

वर्ष में कुछ महीने खेतों में किसी तरह का हरा चारा उपलब्ध नहीं होता। जिससे पशुओं का स्वास्थ्य प्रभावित होना स्वाभाविक हैं। लेकिन चारे के मौसम में यदि अतिरिक्त चारे के ड्रामों में साईलेज बना कर रख ली जाएं तो आवश्यकता पड़ने पर इसे खिला कर किसान अपने पशुओं के स्वास्थ्य, उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता में होने वाली कमी से बचाव कर सकते हैं। ड्रम साईलेज विशेषकर छोटे किसानों के लिये बहुत फायदेमंद हैं क्योंकि इसमें वे चारे की थोड़ी सी अतिरिक्त मात्रा भी साईलेज में बदल कर पशुओं

को पौष्टिक चारा खिला सकते हैं।

विधि :

1. खरीफ फसलें जैसे मक्का, ज्वार, जई, हाईब्रिड नेपियर बाजरा व रबी में जई और अनाज वाली फसलों को 70–80 प्रतिशत नमी के समय एक से डेढ़ इंच के टुकड़ों में सानी बना लें।
2. 200 लीटर क्षमता वाले ड्रम में सानी को थोड़ा–थोड़ा करके लकड़ी के मूसल अथवा साफ पैरों से जमाकर इस तरह भरे कि कहीं भी हवा ना बचें। लगभग एक क्विंटल चारा भरा जायेगा।
3. पूरा ऊपर तक भर जाने पर अच्छी तरह से दबाकर ढ़क्कन बंद करें व साथ दी गई धातु की सील लगायें।
4. चारा भरने की तिथि लिखकर ड्रम को छाया में स्टोर करें।
5. चार सप्ताह के बाद दो साल तक किसी भी समय ड्रम खोलकर साईलेज पशुओं को खिलायें।

सावधानियां :

1. फसल की उचित परिपक्कवता का ध्यान रखें।
2. दलहनी फसलों जैसे लोबिया, बरसीम, रिजका आदि की साईलेज ना बनायें।
3. चारा भरते समय अच्छी तरह जमाकर भरें।
4. एक महीने से पहले ड्रम ना खोलें।
5. ड्रम खोलने के बाद ऊपर की लगभग एक इंच की सतह जिसमें यदि फफूंद हो, तो हटा दें।
6. शुरू में पशु को अन्य चारे के साथ थोड़ी मात्रा में साईलेज खिलायें, ताकि आदत बन जाए।
7. लगभग 5 से 20 किलो साईलेज प्रति पशु, प्रतिदिन खिलाई जा सकती है।
8. एक बार साईलेज निकालने के बाद ड्रम को तुरन्त अच्दी तरह से बंद कर दें ताकि बाकी बचा साईलेज खराब ना हों।
9. एक बार खोलने के बाद 6 दिन के अन्दर पूरे ड्रम की साईलेज का प्रयोग करें।
10. दोबारा साईलेज भरने से पहले ड्रम को अच्छी तरह से धोकर सूखा लें।
11. यह ड्रम केवल साईलेज बनाने के लिए विशेष प्रकार के प्लास्टिक से बनवाया गया है। इसमें कोई अन्य पदार्थ स्टोर ना करें।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

सामान्य अश्व आहार सम्बंधित आवश्यक जानकारी

वैशाली

पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग,

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

अश्व एक उदार वाला शाकाहारी जीव है। अतः इसका पोषण ध्यान से करना चाहिए। घोड़ों को दाना व चारा दिन में कई, बार, कई हिस्सों में खिलाना चाहिए। घोड़ों को उनकी जीवन शैली व श्रेणी के अनुसार विभिन्न मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। अश्वों का आहार संतुलित होना चाहिए। कुल आहार का आधा हिस्सा चारे के रूप में दें।

- आहार को पशु आयतन की बजे वजन के अनुरूप खिलाएं। कई बार समान वजन के अश्व की आहार आवश्यकता अलग–अलग हो सकती है। कॉलिक से बचने के लिए लम्बे रेशेवाले चारे शामिल करें व दाने की अधिक मात्रा देने से बचें। अधिक मात्रा में दाना देने से घोड़ों में लंगड़ापन (लेमिनाईटिस) हो सकता है। दाने की सम्पूर्ण मात्र एक साथ न देकर उसको बांटकर 2–3 बार में खिलाएं।
- कार्य लेने से कम से कम 1 घंटा पहले, अश्वों को चारा–दाना खिला देना चाहिए। भारी कार्य करने के तुरंत बाद, दाना एवं पानी कदापि न दें। गन्दा, गला हुआ, फफूंद लगा हुआ व बासी राशन घोड़ों को न खिलाएं इससे बीमारी होने का खतरा अधिक हो जाता है। अश्वों को हर समय सामान्य तापमान का पानी उपलब्ध करावें। दिन में कम से कम 2–3 बार पानी अवश्य पिलायें।
- आवश्यकतानुसार खुराक धीरे–धीरे घटाई व बढ़ाई जा सकती है।
- अश्व जाति के पशुओं को जौ, तुड़ी, रिजका, हरी मक्का व बरसीम पसंद होती है।

अश्व–आहार का विवरण (आयु एवं कार्य क्षमता के अनुसार)

वर्गीकरण (अवस्था अनुसार)	दाना (कि.ग्रा.)	सुखा (कि.ग्रा.)	हरा चारा (कि.ग्रा.)	नमक (ग्राम)	खनिज मिश्रण (ग्राम)
4 महीने तक का बछड़ा (जब तक माँ का दूध पीना न छोड़ें) दाना बढ़ाएं	दूध छुड़ाने तक प्रति माह 0.5 कि.ग्रा.	जरूरत नहीं	माँ के हिस्से से होगी पूर्ति	दूध छुड़ाने तक प्रति माह 15 ग्राम बढ़ाएं	दूध छुड़ाने तक प्रति माह 10 ग्राम बढ़ाएं
4 से 6 महीने तक का बछड़ा	2.5	नंद कभी सूखे चारे से खाली नहीं होनी चाहिए	2	50	25
एक साल का बछड़ा	2.8		5	60	30
डेढ़ साल का बछड़ा	3.2		10	65	35
2 साल का बछड़ा	3.6		10	75	40

छाना मिश्रण 18 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन होना चाहिए।

जैविक चारा उत्पादन

सतपाल[1], सुरेश कुमार[2] एवं नीलम[3]

[1]चारा अनुभाग, आनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, [2]सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थव्यवस्था में पशुधन एवं पशुपालकों का महत्तवपूर्ण स्थान है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे 70 प्रतिशत् ग्रामीणों के लिए पशुपालन आज भी उनकी आजीविका का आधार है। पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य व अधिक पशु उत्पादन (मांस, दूध इत्यादि) प्राप्त करने के लिए गुणवत्तापूर्ण हरे चारे की उपलब्धता अत्यावश्यक है। 20वीं पशुगणना के अनुसार हमारे देश में 53.57 करोड़ पशुधन है, जिसके लिए 36 प्रतिशत् हरे एवं 11 प्रतिशत् सूखे चारे की कमी है। अतः सफल डेयरी प्रबन्धन के लिए उचित मात्रा में हरे व सूखे चारे का उपलब्ध होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु गुणवत्तापूर्ण चारा भी आवश्यक है। वर्तमान समय में जैविक खेती को काफी महत्व दिया जा रहा है। मानव और भूमि के स्वास्थ्य को सामने रख कर जैविक खेती को बढ़ाया जा रहा है। जैविक खेती में मूलतः संक्ष्लेषित रसायनों का उपयोग निषेध है, चाहे वे पोषक तत्वों के लिये हो या पौध संरक्षण के लिये। वास्तव में जैविक खेती एक पद्धति है जिसमें एकीकृत खेती को अपनाते हुए उपलब्ध संसाधनों का कृषि उत्पादन में समुचित उपयोग किया जाता है। कम से कम लागत तथा स्वस्थ व समुचित उत्पादन इस पद्धति का उद्देश्य रहता है। टिकाउ खेती को जैविक खेती का आधार माना गया है। जहां तक फसलों में पोषक तत्वों के प्रबंधन का सवाल है चाहे जो भी प्रणाली अपनाई जाए, फसल को समुचित और सन्तुलित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध कराना नितान्त आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। फसलों में पोषक तत्वों को जैविक स्त्रोत में उपलब्ध कराना जैविक खेती की अनिवार्यता है। जैविक पशुपालन में जैविक विधि से तैयार किये गये पशु आहार का महत्वपूर्ण स्थान है। जैविक आहार सूखे व हरे चारे, खल तथा चूरी के रूप में दिया जाता है। पशु को खिलाये जाने वाले आहार में सूखे व हरे चारे का दो–तिहाई भाग तथा दाना एक–तिहाई भाग के अनुपात में दिया जाता है। वर्तमान समय में दूध उत्पादक जैविक खाद्यों के प्रति जागरुक है तथा ऐसे जैविक आहार पशुओं को खिलाना चाहते हैं, जिससे कि उनका स्वास्थ्य अच्छा रहे तथा उन खाद्यों का किसी भी प्रकार का दुष्प्रभाव ना पड़े। इसके लिये वे इन उत्पादों को अधिक मूल्यों पर भी खरीदने के लिये तैयार रहते हैं।

जैविक चारा उत्पादन की आवश्यकता क्यों

फसलोत्पादन बढ़ाने के लिए सिफारिस से अधिक मात्रा में प्रयोग में लाये जाने वाले कृषि रसायनों के अवांछित तत्व मृदा द्वारा या सीधे फसलों में पहुँच जाते हैं तथा इन्हीं फसलों से प्राप्त चारे व दाने के सेवन से हानिकारक तत्व पशु के शरीर में पहुंचते हैं। इन पशुओं से उत्पादित दूध व अन्य उत्पादों के सेवन से हानिकारक रसायन मानव शरीर में पहुंचते हैं तथा असाध्य रोगों का कारण बनते हैं। इन हानिकारक रसायनों से पशु तथा मनुष्य दोनों की प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर बन जाती है। यदि पशुओं के लिये जैविक चारा उपलब्ध कराया जाये तो यह पशुओं के स्वास्थ्य में वृद्धि लाता है। इससे पशु उत्पादों में स्वाद तथा पौष्टिकता में वृद्धि होती है। जैविक पशुपालन विधि से उत्पादित दूध में ओमेगा–3 फेटीऐसिड सामान्य दुध की अपेक्षा अधिक होता है जो कैंसर, हृदय रोग, गठिया, त्वचा रोग तथा सूजन सम्बंधी बीमारियों से बचनें में मददगार होता है। जैविक दूध में सामान्य दूध की अपेक्षा अधिक एंटी–ऑक्सीडेंट व विटामिन्स होते है। अतः पशुपालक भाइयों को जैविक पशुपालन के लिये खेती से चारा फसलों का उत्पादन करना होगा।

जैविक चारा उत्पादन

प्राचीनकाल से ही हमारे देश में खेती जैविक पद्धति से होती आ रही है। वर्तमान समय में भी के देश असिंचित

भू–भाग में जहाँ के कृषकों की आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर है, प्रायः बिना रसायनों के प्रयोग के खेती की जा रही है। ऐसे क्षेत्रों में फसलों की उत्पादकता बहुत कम है तथा फसल उत्पादों के विपणन की उचित व्यवस्था नहीं होने के कारण उनके द्वारा उत्पादित फसलों, चारों तथा पशु उत्पादों का सही मूल्य नहीं मिल पाता। यदि ऐसे क्षेत्रों के कृषकों व पशुपालकों के उत्पादक समूह बनाकर उनसे वैज्ञानिक विधि से जैविक खेती व पशुपालन करवाया जाये तो न केवल उनकी फसलों तथा पशुओं की उत्पादकता में वृद्वि होगी वरन् उनके द्वारा उत्पादित जैविक कृषि उत्पादकों को उचित मूल्य भी मिल सकेगा। इसके अलावा देश के अन्य राज्यों में भी किसान जैविक खेती करते हैं तथा अपनी खेती–बाड़ी से प्राप्त हरा चारा व फसल अवशेष पशुओं को पशु आहार के रूप में खिला सकते हैं।

जैविक विधी द्वारा चारा उत्पादन में पोषक तत्व निम्न स्त्रोतों से प्राप्त किये जा सकते हैं:

1. सामान्य जैविक खाद (गोबर खाद, कचरा खाद, केंचुआ खाद)
2. हरी खाद
3. खली की खाद
4. फसल अवशेष
5. जैव उर्वरक (राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, पी.एस.बी.)
6. जलीय वनस्पति
7. फसल चक्र (दलहनी व गहरी जड़ों वाली फसलें)
8. परम्परागत स्त्रोत (जीवामृत, पंचगव्य आदि)
9. खनन से प्राप्त प्राकृतिक खनिज

तलिका 1: सामान्य जैविक खादों में प्रमुख पोषक तत्वों की प्रतिशत् मात्रा

जैविक खाद	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाशियम
गोबर की खाद	0.5–1.5	0.4–0.8	0.5–1.9
कम्पोस्ट (शहरी)	1.0–2.0	1.0–1.2	1.5–1.8
कम्पोस्ट (ग्रामीण)	0.4–0.8	0.3–0.6	0.7–1.0
केंचुआ खाद	1.0–2.3	1.0–1.5	2.0–3.0
शौचालय खाद	1.2–1.3	0.8–1.0	0.4–0.5
मुर्गीशाला खाद	2.5–3.0	2.4–3.0	2.2–2.5
मिंगनी खाद	0.6–0.7	0.5–0.7	0.03–0.04

तलिका 2: सामान्य हरी खाद फसलों से हरे पदार्थ और नाइट्रोजन का योगदान

हरी खाद फसल का नाम	फसल की 45–60 दिन की अवस्था पर	
	हरा पदार्थ (टन/है.)	नाइट्रोजन (किग्रा/है.)
सनई	21.2	91
ढैंचा	20.2	86
मूंग	8.0	42
लोबिया	15.0	74
ग्वार	20.0	68
सेंजी	28.6	63
बरसीम	15.5	67

तलिका 3: विभिन्न खली में प्रमुख पोषक तत्वों की प्रतिशत् मात्रा

खली का नाम	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाशियम
नीम की खली	5.0–5.3	1.0–1.1	1.4–1.5
कुसुम की खली	4.8–4.9	1.4–1.5	1.2–1.3
महुआ की खली	2.5–2.6	1.8–1.9	1.8–1.9
करंज की खली	3.9–4.0	0.9–1.0	1.3–1.4
सरसों की खली	5.1–5.2	1.8–1.9	1.1–1.3

तालिका 4: विभिन्न फसल अवशेषों में प्रमुख पोषक तत्वों की प्रतिशत् मात्रा

फसल का नाम	प्रतिशत मात्रा (शुष्क आधार पर)		
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाशियम
धान	0.58	0.23	1.66
गेहूँ	0.49	0.25	1.28
ज्वार	0.40	0.23	2.17
बजरा	0.65	0.75	2.50
गन्ना	0.35	0.04	0.50
मक्का	0.59	0.31	1.31
अरहर	1.10	0.58	1.28

जैविक चारा उत्पादक के घटक–

मृदा : जैविक खेती में सबसे महत्वपूर्ण घटक मृदा है, क्योंकि पौधे मृदा से ही पोषक तत्वों को प्राप्त करते हैं। अतः

जैविक खेती के लिए मृदा का स्वस्थ होना बहुत जरूरी है। उर्वरक इसके लिए मृदा में जैविक खाद के प्रयोग के साथ –साथ उपयुक्त शस्य क्रियायें जैसे जल एवं मृदा संरक्षण उपाय, मिश्रित खेती तथा फसल चक्र इत्यादि करना आवश्यक है।

बीज : जैविक खेती में उन्नत किस्म के प्रमाणित बीजों का ही उपयोग करना चाहिये। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा क्षेत्र विशेष के लिए अनुमोदित, कम जल व उर्वरकता मांग वाली, अल्पावधि वाली तथा कीट एवं रोग रोधी किस्म के बीजों की संस्तुलित मात्रा में प्रयोग करना लाभदायक रहेगा।

जैविक खाद : पौधों की अच्छी पैदावार के लिये सड़ी–गली गोबर की खाद, नाडेप कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, पी.एस.एन. पिट द्वारा तैयार खाद, रोक फास्फेट, जिप्सम तथा खल के प्रयोग से मादा की संरचना व उर्वरकता में सुधार आता है। जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम कल्चर, फास्फोरस सोल्युबल बैक्टीरिया कल्चर, एजोस्पाइरिलम तथा एजोटोबेक्टर कल्चर के प्रयोग से भी मृदा की उर्वरकता में वृद्धि हो जाती है। किसानों द्वारा अजोला उत्पादन में पशुओं के लिये पौष्टिक जैविक चारा मिलता है तथा जिस पानी की क्यारियों में अजोला उगाया जाता है, वह पानी की नाइट्रोजन युक्त होने के कारण पौधों के लिये लाभदायक रहता है। इस पानी को सिंचाई जल के साथ अथवा फसलों पर सीधा छिड़क कर भी दिया जा सकता है।

पौध संरक्षण एवं उपाय : फसलों के रोग व कीट नियन्त्रण हेतु जैविक कीटनाशी, (बायोपेस्टिसाइड) जैसे नीम तेल व गौमूत्र आधारित कीटनाशी दवा, एन.पी.वी. तथा ट्राइकोग्रामा का प्रयोग करें साथ ही भौतिक बीजोपचार (सूर्य किरण व गर्म उपचार) जैसी जैविक विधियों का प्रयोग भी लाभदायक होता है। खड़ी फसल में कीट नियन्त्रण हेतु लाइट–ट्रेप तथा फेरो–मौन ट्रेप जैसे उपकरण काम में लेने चाहिये। ट्राइकोग्रामा कार्ड भी फसलों में कीट नियन्त्रण में कारगर भूमिका निभाते हैं।

उपरोक्त कृषि क्रियाओं को अपनाकर चारा उत्पादन करने से उत्पादन स्तर को बढ़ाने के साथ–साथ लागत में भी कमी लाई जा सकती है। जैविक चारा उत्पादन जैविक पशुपालन का प्रमुख आधार है। अतः पशुपालक कृषक भाइयों को चाहिये कि वे प्राकृतिप्रद उत्पदान जैसे गोबर, गौमूत्र तथा नीम से तैयार से खाद व कीटनाशकों का प्रयोग करें तथा उन्नत किस्म के बीज व उपयुक्त फसल–चक्र अपना कर वैज्ञानिक रीति से जैविक चारा उत्पादन कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करें।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु– 930–000–0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

बकरी में ब्यांत प्रबन्धन

विकास सचान एवं शशिकांत गुप्ता

मादा पशु रोग विज्ञान विभाग,
पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश

पशुपालन कृषि क्षेत्र का एक अभिन्न अंग है जिसका उपयोग केवल कृषि कार्यों के लिए ही नहीं है बल्कि दूध और मांस आदि के उत्पादन के लिए भी किया जाता है। आमतौर पर गाय, भैंस, घोड़ा, ऊंट, भेड़ और बकरी आदि जानवरों को विभिन्न प्रयोजनों के लिए पाला जाता है। गाय और भैंस पालन की तरह ही बकरी पालन भी आर्थिक सुद्रणता के लिए सबसे लाभदायक व्यवसायों क्षेत्रों में से एक है क्योंकि बकरी एक अच्छे प्रतिरोधक क्षमता वाली पशु होने के साथ साथ प्रतिकूल परिस्थितियों में आसानी से जीवन यापन कर सकने वाली पशु है। इसे रख–रखाव के लिए छोटा स्थान तथा खाने की कमी वाले समय में भी आसानी से पाला जा सकता है। परन्तु सामान्यतः भोजन प्रणाली, आवासीय और प्रजनन प्रबंधन आदि से संबंधित वैज्ञानिक ज्ञान की कमी के कारण पशुपालक को बकरी पालन से अधिकतम लाभ नहीं मिल पाता है। विभिन्न बीमारियों के अतिरिक्त, गर्भावस्था के दौरान अनुचित प्रबंधन के कारण और बकरी में अच्छी खासी मृत्यु दर होती है, जिससे किसानों या पशुपालकों को भारी आर्थिक नुकसान हो सकता है। गर्भावस्था एवं ब्यांत के दौरान उचित प्रबंधन के ज्ञान और वैज्ञानिक कौशल को अपनाकर इन नुकसानों को कम किया जा सकता है।

गर्भाधान के समय, बकरी की उम्र और शरीर के आकार/वजन को ध्यान में रखा जाना चाहिए। छोटी बकरियों में ब्यांत के समय कठिन प्रसव होने की अधिक संभावना होती है, विशेषकर जब बड़े आकार की नस्ल के बकरे द्वारा गर्भाधान किया जाता है। आमतौर पर कमजोर या छोटी मादा बकरियों के बच्चे कमजोर होते हैं और विभिन्न बीमारियों से आसानी से ग्रसित हो जाते हैं। चूंकि प्रसव के बाद के कुछ दिन नवजात बच्चे के सामान्य विकास एवं बीमारियों के लगने के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण होते है इसलिए गर्भाधान के समय का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए कि भविष्य में होने वाले प्रसव के समय वातावरणीय तनाव कम से कम हो अर्थात अधिक से अधिक अनुकूल परिस्थितियों का होना आवश्यक है। गर्भवती मादाओं को उचित समय पर अन्य बकरियों की तरह ही एफएमडी, पॉक्स और पीपीआर आदि के टीके लगाए जाने चाहिए। गर्भावस्था के दौरान परिजीविनाशक औषधियों का प्रयोग पशुचिकित्सक की सलाह से उचित मात्रा के साथ सावधानीपूर्वक करना चाहिए। आमतौर गर्भावस्था के अंतिम एक से डेढ़ महीने के दौरान अतिरिक्त देखभाल और प्रबंधन के लिए गर्भवती बकरियों को अलग रखा जाना चाहिए। गर्भवती माँ तथा बढ़ते भ्रूण के लिए सुपाच्य एवं पोषक चारे का प्रबंध होना आवश्यक है क्योंकि अंतिम एक महीने में भ्रूण की वृद्धि दर अधिकतम होती है। इसके लिए प्रतिदिन लगभग 200 ग्राम दाना गर्भवती बकरी दिया जाना चाहिए, जिसे गर्भधारण के अंतिम महीने में 400–500 ग्राम प्रतिदिन तक बढ़ाया जाना चाहिए। चारे में सूखे एवं हरे चारे की संतुलित मात्रा होनी चाहिए। 10–20 ग्राम तक खनिज मिश्रण प्रतिदिन की दर से भोजन में शामिल करना अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है। स्वच्छ जल हर समय पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होना चाहिए। गर्भवती जानवरों को पैडॉक/बाड़ों के बाहर प्रतिदिन घूमने फिरने (व्यायाम) करने के लिए पर्याप्त स्थान मुहैया होना चाहिए। गर्भावस्था के अंतिम सप्ताह में गर्भित पशु को पैडॉक या जंगल में बहुत दूर नहीं जाने देना चाहिए। जिन बकरियों में पूर्व में गर्भपात की समस्या रही हो उन्हें अन्य गर्भित पशुओं से अलग रखना चाहिए एवं अधिक समय तक कार्य करने वाली एंटीबायोटिक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। ब्यांतों के मौसम से पहले पैडॉक/बाड़ों को अच्छी तरह से साफ किया जाना चाहिए, फर्श को हल्के एंटीसेप्टिक पाउडर या सफ़ेद चूने के साथ मिश्रित मिट्टी या नरम और सूखी घास के साथ तैयार किया जाना चाहिए। दीवारों को दरार मुक्त तथा चूने के साथ

धोकर साफ़ करना चाहिए। बारिश, सीधी सूरज की रोशनी, अधिक ठंड या तूफान आदि से बचाव के पर्याप्त प्रबन्ध होने चाहिए। प्रसव के लिए किडिंग पैन को इन पैडॉक्स/बाड़ों में स्थानांतरित किया जाना चाहिए। प्रसव के समय नवजात को गिरने अथवा चोट से बचाने के लिए किडिंग पैन के फर्श को भी मुलायम, सूखी एवं साफ़ घास से ढकना चाहिए. प्रसव काल दौरान एक व्यक्ति अलग से नियुक्त करना चाहिए जो प्रसव में तथा नवजात बच्चे को जमीन पर गिरने से बचाने के लिए सहायता करे। ब्यांत के तुरंत बाद नवजात में सामान्य श्वास को सुनिश्चित करने के लिए तुरंत ही नासिका से श्लेष्म और झिल्ली को हटा देना चाहिए। शरीर को विशेष परिस्थितियों जैसे श्वाय में तकलीफ होने पर नवजात बच्चे को उल्टा लटका कर धीरे धीरे झटके अथवा गोल घुमाने से मदद मिलती है। बच्चे की छाती पर थोड़ा दबाव के साथ मालिश करने से हृदय की कार्यिकी एवं श्वास को सुचारू रूप से स्थापित किया जा सकता है। नवजात को उसकी माँ के पास रखना चाहिए जिससे माँ उसको चाट सके यह माँ की प्रवृत्ति बनाये रखने तथा रक्त परिसंचरण में सुधार के लिए बेहद जरूरी है। किसी मुलायम सूती कपड़े की मदद से बच्चे को सुखाया जाना चाहिए। साफ़ ब्लेड या कैंची का उपयोग करते हुए लगभग एक से.मी. की दूरी से गर्भनाल को काटना चाहिए और आयोडीन से मरहम पट्टी करनी चाहिए। यह जीवाणु संक्रमण विशेष रूप से क्लोस्ट्रीडियम जीवाणु के जोखिम को कम करता है। बकरी प्रसव के लगभग 6 घंटे के भीतर जेर को निष्कासित कर देती है परन्तु अधिक समय बीतने पर पशु चिकित्सक को सलाह और उपचार के लिए बुलाया जाना चाहिए। गर्भाशय को समय से संकुचित एवं सफाई में मदद के लिए हर्बल गर्भाशय टॉनिक प्रदान किये जा सकते हैं। योनि क्षेत्र को पोटेशियम परमैंगनेट अथवा लाल दवा से धो कर साफ एवं सूखा रखना चाहिए।

माँ के कोलोस्ट्रम में मौजूद एंटीबॉडी से बच्चे को प्रारंभिक प्रतिरक्षा प्रदान की जाती है इसलिए प्रत्येक बच्चे को जन्म से तीन दिनों के भीतर कोलोस्ट्रम पिलाना नितांत आवश्यक होता है। कुछ बच्चे माँ के थनों से दूध लेने में असमर्थ होते हैं या कभी–कभी पहली ब्यांत में माँ अपने बच्चे को खिलाने के लिए तैयार नहीं होती हैं, इसलिए बच्चे को थनों को पहचानने एवं दूध पीने में सहायता दी जा सकती है। हर दिन बच्चे को दूध पिलाने और थानों को खाली करने के बाद पोटेशियम परमैंगनेट के घोल से सफाई करना आम और महत्वपूर्ण कार्य हैं। यदि बकरी ब्याने के बाद कोलोस्ट्रम का उत्पादन करने में सक्षम नहीं है, तो बच्चे को अन्य हालिया ब्याने वाली बकरी से दूध उपलब्ध कराया जाना चाहिए। गाय का दूध प्रतिकूल परिस्थिति में 1:1 अनुपात में इस्तेमाल किया जा सकता है। बोतल से दूध पिलाने से बचना चाहिए लेकिन अगर जरूरत हो तो अलग बच्चे के लिए अलग बोतल का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। पैडॉक /खलिहान को कुत्तों या अन्य जानवरों से सुरक्षा के लिए अच्छी तरह से फेस किया जाना चाहिए। इन पैडॉक में स्वच्छता पर अधिकतम ध्यान दिया जाना चाहिए।

ये वैज्ञानिक प्रबंधकीय कौशल निश्चित रूप से प्रसूता माँ और बच्चे की मृत्यु दर को कम कर सकते हैं, जिससे बकरी पालन में अवांछित आर्थिक नुकसान से बचा जा सकता है। यह निश्चित ही पशुपालक के आर्थिक स्तर को ऊपर उठाने में मदगार साबित होगा।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

डेयरी पशु आधुनिक कृषि प्रबंधन- एक वैज्ञानिक अनुप्रयोग

अजय सतबीगे एवं एन.ए. पाटिल

पशु चिकित्सा विभाग, पशु चिकित्सा कॉलेज, बीदर
कर्नाटक पशु चिकित्सा पशु और मत्स्य विज्ञान विश्वविद्यालय, बीदर

परिचय

प्राचीनकाल से पशु क्षेत्र और ग्रामीण जीवन में एक लोकप्रिय संस्कृत कहावत है 'वर्द्धनपशवः वर्धनादनदेशः' अर्थात् विकासशील पशुधन देश का विकास कर रहा है। इसलिए आज की आधुनिक दुनिया में, मवेशियों का वैज्ञानिक प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। आज लोग तकनीकी तरीके से खेती कर रहे हैं, जिसके कारण वे पारंपरिक तरीके से कम समय में अधिक लाभ कमा सकते हैं।

वैज्ञानिक पशुपालन के महत्वपूर्ण बिंदु हैं –

साइट चयनः

कृषि भूमि का क्षेत्रफल पर्याप्त होना चाहिए। इसमें भविष्य के विस्तार का प्रावधान होना चाहिए। इसे एक जगह छोड़ दिया जाना चाहिए, ताकि खेत में पानी जमा न हो सके। फार्म शेड को कुछ ऊंचे स्थान पर रखा जाना चाहिए ताकि इसे सूरज और हवा के संपर्क में आए। शेड का वेस्ट–ईस्ट ओरिएंटेशन फायदेमंद है। उचित जल निकासी व्यवस्था का प्रावधान होना चाहिए। फार्म को बाजार क्षेत्र के पास रखा जाना चाहिए, ताकि उत्पाद बाजार में आसानी से उपलब्ध हो सके, एक अच्छी तरह से स्थापित खेत को चलाने के लिए कुशल बिजली कनेक्ट आवश्यक है। इलेक्ट्रिक मोटर कनेक्शन के साथ पानी की सुविधा आसानी से खेत में पानी की आवश्यकता प्रदान करती है।

Breed का चयन

यह उत्पादन की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। हमारे स्थानीय मवेशी उत्पादन समय पर अधिकतम 1.2 लीटर (देओनी) दूध देते हैं। इसी तरह वे 4.5 साल की उम्र में पहला बछड़ा देते हैं। हालांकि जर्सी, होल्स्टीन, फ्रीजेन जैसी विदेशी नस्ल 2.3 साल की उम्र में पहला बछड़ा देती है। वे प्रति दिन औसतन 10.20 लीटर तक अधिक दूध देते हैं। यह आहार और स्तनपान के चरण के आधार पर प्रतिदिन 14.15 लीटर तक बढ़ सकता है। लेकिन किसान को यह ध्यान रखना चाहिए कि स्थानीय नस्लों में रोग के प्रति अत्यधिक प्रतिरोध है जबकि विदेशी नस्लों में प्रतिरोध कम है। यही कारण है कि कर्नाटक में 50% जर्सी, स्वदेशी क्रॉस पसंद किया जाता है। यह अब राज्य के किसान के बीच सबसे लोकप्रिय है। इसलिए क्रॉस ब्रीड्स में रोग प्रतिरोध होता है और अधिक दूध उत्पादन की क्षमता होती है।

प्रबंध प्रबंधन

शोध के अनुसार मवेशियों को प्रतिदिन 9 किलोग्राम हरा चारा 100 किलोग्राम शरीर के वजन की आवश्यकता होती है। हरी घास उसके दूध उत्पादन के लिए रखरखाव के लिए महत्वपूर्ण है। आज विभिन्न प्रकार के संकर घास के बीज उपलब्ध हैं। कुछ महत्वपूर्ण घास संकर नेपियर, पैरा, मक्का, मार्वल घास हैं। किसान को चारे की खेती के लिए 1.2 बीघा जमीन रखनी चाहिए, ताकि साल भर हरा चारा उपलब्ध हो सके। हरी घास के साथ किसान अनाज, जौए ज्वार जैसी केंद्रित चारा सामग्री दे सकते हैं। कुछ ध्यान अधिक प्रोटीन प्रदान करते हैं, जो कि स्तनपान कराने वाली गाय के लिए आवश्यक है। पशु मूल उत्पाद जैसे अस्थि भोजन, मछली खाना, मांस भोजन भी पशु को खिलाया जा सकता है, यह बढ़ती हुई मछलियों के लिए सभी आवश्यक खनिज विटामिन प्रदान करता है। धान का पुआल और समृद्ध पॉलिश मवेशियों को प्रदान किया जा सकता है, जो गाय की भूख को नियंत्रित करता है।

एक और बहुत महत्वपूर्ण घटक पानी है इसलिए जीवन के विभिन्न चरणों में मवेशियों के लिए पानी की आवश्यकता नीचे दी गई है,

स्तनपान कराने वाली गाय – 60.80 ए ल ध् दिन

बछड़ों 1.6 महीने – 5.10 एल ध् दिन

हेइफर – 15.30 एल ध् दिन

सूखी गाय – 35.50 एल ध् दिन

सर्दियों के मौसम की तुलना में गर्मी के मौसम में पानी की आवश्यकता की मात्रा अधिक होती है। पानी पशु को गर्मियों के तनाव से मुक्त रखता है। यह शरीर के तापमान और शरीर के सामान्य संतुलन को बनाए रखता है। इसलिए किसान को अपनी गायों को पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध कराना चाहिए।

सफाई और रूट प्रबंधन

फार्म शेड के नियमित सफाई अभ्यास से बीमारी 60–80 प्रतिशत तक कम हो जाती है। फार्म शेड के प्रवेश पर एक पैर स्नान मौजूद होना चाहिए। फुट बाथ के पानी में पोटाश के पानी का घोल होता है। यह सेनेटरी दृष्टिकोण के लिए महत्वपूर्ण है। नियमित सफाई प्रथाओं में गोबर, मूत्र की सफाई और पशु को नहलाना, संवारना, मंजन करना शामिल है। उपकरणों की सफाई रोगाणुओं को पैदा करने से रोकती है। निस्संक्रामक मक्खी विकर्षक दिनचर्या में मध्य समय पर छिड़काव किया जाना चाहिए। दूध देने और शांत करने के समय सफाई का अत्यधिक ध्यान रखा जाना चाहिए। दूध देने से पहले उड़द को आयोडीन की मिलावट से धोना चाहिए। नए जन्मे को सूखे कपड़े से अच्छी तरह से साफ किया जाना चाहिए और प्लेसेंटा का निपटान करना चाहिए। गायों को दुहने वाला व्यक्ति स्वस्थ और तपेदिक और अन्य संक्रामक रोगों से मुक्त होना चाहिए।

सामान्य एस्ट्रस संकेत हैं–

- निम्न
- बेचौनी
- योनि से श्लेष्म स्राव
- अन्य जानवरों पर बढ़ते

एस्ट्रस का पता लगाने के बाद जानवरों को कृत्रिम गर्भाधान दिया जाना चाहिए। गर्भवती पशु को अन्य स्तनपान कराने वाली गायों से दूर ले जाना चाहिए। प्रारंभिक गर्भावस्था के चरण के दौरान गाय को सीए पूरक दिया जाना चाहिए। बछड़ों को बछड़े के शेड में रखना चाहिए।

नियंत्रण और इसके प्रबंधन

पशु चिकित्सक से उचित सलाह लेकर किसान को नियमित रूप से अपने मवेशियों के लिए टीका लगाना चाहिए। परजीवी दूध उत्पादन में कमी करते हैं, पशु को अन्य बीमारियों के लिए अति संवेदनशील बनाते हैं और विकास दर में कमी करते हैं। नए खरीदे गए जानवरों के लिए संगरोध अभ्यास का पालन किया जाना चाहिए। रोगग्रस्त पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से दूर रखना चाहिए। यदि पशु में कोई असामान्यता दिखाई देती है, तो सीधे पशु चिकित्सक से परामर्श किया जाना चाहिए। स्वच्छता, सफाई और उचित पोषण प्रबंधन से बीमारी की घटनाओं को 80 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। दुधारू पशुओं का बीमा अवश्य करायें।

आय

लगभग 70 प्रतिशत खेत की आय दूध और दूध उत्पादों की बिक्री से प्राप्त की जाती है। कर्नाटक में दूध का अच्छा बाजार है। आज कर्नाटक में कई दूध सहकारी संघ हैं। दुग्ध उत्पादों में दही, पनीर, मक्खन, लस्सी, मलाई, घी आदि शामिल हैं। किसान नर बछड़ों को बेचकर पैसा कमा सकते हैं। यह किसान को अच्छा लाभ देता है। गोबर को खाद के रूप में बेच सकते हैं जो आय का एक और राज्य है। कुछ किसान एआई (कृत्रिम गर्भाधान) उद्देश्य के लिए उच्च गुणवत्ता वाला बैल वीर्य बेच सकते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि डेयरी खेती आर्थिक रूप से बहुत लाभदायक है और यह युवाओं को रोजगार और आय भी प्रदान कर सकती है। आजकल विभिन्न वित्तीय संस्थान जैसे **NABARD, NRLM, RSKVY** वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं और किसानों और युवाओं को अपने मवेशी फार्म शुरू करने में मदद करते हैं।

हरियाणा में बाहरी परजीवी से होने वाले रोग और उनका नियंत्रण

हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता

पशु चिकित्सक परजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

ऐसे रोग जो शरीर के बाहरी अंगों जैसे त्वचा आदि पर परजीवियों के सक्रंमण से उत्पन्न होते हैं, बाह्य परजीवी रोग कहलाते हैं। ऐसे रोग निम्न परजीवियों के द्वारा फैलाये जाते हैं–

1. चीचड रोग
2. माइट्स से उत्पन्न रोग – खाज अथवा खौडा रोग
3. जुँए पड़ना

चमड़ी रोग के परजीवी पशुओं के शरीर पर चिपक कर और उन्हीं का खून चूसकर अपना पोषण लेते हैं। इसी से पशु को अत्यंत कष्ट होता है। कुछ बाहरी परजीवी तो पशुओं के शरीर पर घाव पैदा करते हैं तो कुछ बाहरी परजीवी पशु के पैरों की चमड़ी को खाकर उनको कष्ट पहुंचाते हैं, जिससे पशु बेचैन रहता है और वह खाना–पीना कम कर देता है। शरीर पर इनके चिपके रहने से पशुओं में दुर्बलता, रक्तहीनता एंव जलन पैदा होती है। पशु रोग से ग्रसित होने के कारण उत्पादन कम कर देता है।

खाज खुजली अथवा खौडा रोग

यह माइट्स नामक परजीवी से उत्पन्न होता है। कुछ इस प्रकार के परजीवी त्वचा के अन्दर 0.5–1 इंच की गहराई तक जाकर वहीं पर अंडे देते हैं। इसमें अत्यधिक खुजली होती है एवं त्वचा में पपड़ी बन जाती है। त्वचा मोटी हो जाती है इसमें संक्रमण होने से फोड़ा–फुंसी निकल आते हैं।

प्रमुख रुप से माइट्स निम्न प्रकार के होते हैं जो खाज के कारण होते हैं।

1. **डिमोडेक्टिक खाज :** यह परजीवी पशुओं के बालों की जड़ों में रहता हैं और वहां पर सूजन उत्पन्न करता है, कुछ समय बाद वहाँ की चमड़ी मोटी हो जाती है बाल गिर जाते है। इन स्थानों पर मवाद उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का संक्रमण हो जाने के बाद फोड़ा–फुंसी बन जाते है। इस प्रकार की खाज विशेष रुप से कुत्तों में देखने को मिलती है। वैसे यह पशुओं और बकरियों में भी होती है। यह शरीर के आँख कान, गर्दन और पीठ के भागों में होती है। यह खाज प्रायः दो प्रकार की होती हैं– सुखा/परतदार तथा दानेदार/फुंसीदार। सुखी/परतदार खाज में चमड़ा मोटा होकर सिकुड़ जाता है और ताँबे के समान लाल दिखाई देने लगता है। जो लाल, रूखा सा एंव दरार सा फटा हुआ होता है और पपड़ी से हो जाता है। इसमें खुजलाहट नहीं होती है। दानेदार या फुंसीदार खाज में कीटाणुओं के संक्रमण से इसके सुखे रूप में छोटे–छोटे दानेदार फुंसियों निकल आती है। कुछ फुंसियाँ मिलकर फोड़े जैसा रूप बना लेते हैं। इसमें त्वचा सूजकर लाल हो जाता है और अनेक छोटे–छोटे दाने या फुंसियाँ हो जाती हैं। इसमें माइट्स के अण्डे होते हैं त्वचा मोटी होकर पपड़ी से ढक जाती है।
2. **सारकोप्टिक खाज :** यह कुत्तों, भेड़–बकरी एवं घोड़ों में मिलती है। यह रोग अधिकतर पशुओं के माथे, गर्दन, सींग और पूँछ की जड़ में मिलता है। संक्रिमित स्थान पर लाल दाने निकलते हैं जो शीघ्र ही फोड़ों में बदल जाते हैं। इनके फूटने पर गाढ़ा–पीला तैलीय स्त्राव निकलता है। पशु जब इन स्थानों को रगड़ता है तो वहाँ के बाल गिर जाते हैं।
3. **कोरिओप्टिक खाज :** यह भेड़ों एवं घोडों में देखने को मिलती है। यह शरीर के गर्दन, पूँछ और पैरों में होती है। इसके कारण अक्सर घोडों में लंगडापन आ जाता है।
4. **सोरोप्टिक खाज :** यह भेड़ों व भैंस में ही देखने को मिलती है। यह शरीर के गर्दन, पीठ, पूँछ की जड़ और पैरों में होती है। जब यह सिंग के आस–पास हो जाती हैं तो पशुओं में खूंटाँ रोग हो जाता है।

जूँ प्रायः सभी घरेलू पशुओं में विशेषकर सर्दी के दिनों में शरीर पर पाये जाते हैं। यह बालों के बीच और पशुओं को काटने एवं उनका रक्त चूसने से पशु खाना–पीना छोड़ देते हैं, उनकी उत्पादन क्षमता घट जाती है, वह खुजलाते रहने से पशु के शरीर पर घाव बन जाते हैं, त्वचा मोटी हो जाती है, पशु प्रायः अशांत रहते हैं।

बाहरी परजीवियों से हानियाँ :

1. रक्त कम होना रक्तहीनता, दुर्बलता, उत्तेजकता पैदा करना।
2. पशु रोग से ग्रसित होकर अनुत्पादक होती है उनकी उत्पादन क्षता कम हो जाती है।
3. खाज के संक्रमण से अत्यधिक खुजलाहट होती है एवं त्वचा में पपड़ी पड़ कर दरार बन जाती है।
4. जुएँ पड़ने एवं रक्त चुसे जाने से पशु प्रायः खाना–पीना छोड़ देते हैं। उनकी उत्पादन क्षमता घट जाती है, खुजलाते रहने से पशु के शरीर पर घाव बन जाते हैं त्वचा मोटी हो जाती है।

उपाय :

1. समय–समय पर पशुओं की जांच करवानी चाहिए।
2. बाहरी जीवों से संक्रमित पशुओं को अलग रखना चाहिए।
3. संक्रमित पशुओं का पशु चिकित्सक की सलाह से उपयुक्त इन्सेकटिसाइड द्वारा पूरी एतियात के साथ इलाज कराना चाहिए।

इन परजीवियों के लिये जो परजीवी नाशक औषधियाँ हैं वे अत्यंत जहरीली होती हैं। इसलिये योग्य पशुचिकित्सक की सलाह और निर्देशों के अनुसार ही इनका प्रयोग नहलाने, धोने एवं लगाने में किया जाना चाहिये।

रोकथाम :

1. पशु के शरीर को साफ रखना चाहिये।
2. पशु के बाँधने की जगह पर मेलाथियान का (0.1 प्रतिशत का) या साईपरमेथ्रिन (150 पीपीएम) घोल का छिड़काव किया जा सकता है।
3. उचित मात्रा में साईपरमेथ्रिन डेल्टामेथ्रिन तथा अमितराज का घोल बनाकर पशु पर स्प्रे कराना चाहिए।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

हरियाणा की बकरियों में परजीवी नियन्त्रण

हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता

पशु चिकित्सक परजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

आन्तरिक परजीवी :

वह परजीवी, जो बकरियों में उनकी आहार नाल रक्त या यकृत आदि में निवास करते हैं, जैसे– फीताकृमि, गोलकृमि, पत्ताकृमि यकृतकृमि व कॉक्सिडिया आदि। ये मुख्य रूप से अपना पोषण बकरी के शरीर से प्राप्त करते हैं और उनमें अनेक रोग उत्पन्न करके पशु को कमजोर और उनकी मृत्यु का कारण बनते हैं।

आन्तरिक परजीवी के अण्ड़े संक्रमित बकरी की मिंगणी के साथ बाहर निकलते हैं व इसके सम्पर्क में आने वाले चारे या पानी के माध्यम से स्वस्थ बकरियों को संक्रमित करते हैं। रोगी बकरियों में शारीरिक कमजोरी व आंखों में गीड़ आना, दस्त या कब्ज होना तथा मिंगणियों में बांस आना, कभी–कभी दस्त के साथ खून आना, शरीर में खून की कमी होना, आवारा वस्तुओं को खाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

रोग से बचाव के उपाय :

- वर्ष में 3–4 बार पिपराजीन, फेनबेंडाजोल निलवर्म आदि में डीवर्मिंग करायें।
- चारे–पानी को बीमार बकरी के मल आदि से दूषित होने से बचायें।
- पशु चिकित्सक को बीमार बकरी का मल समय–समय पर दिखायें।

बाहरी परजीवी :

- ये परजीवी बकरी की त्वचा पर निवास करते हैं जिससे बकरी की त्वचा रूखी–सूखी पड़ जाती है और उस स्थान से बाल गिरने लगते हैं।

बाहरी परजीवी प्रभावित पशु सुस्त पड़ जाते हैं। बकरी के कमजोर होने व रक्त चूसने के कारण उत्पादन घट जाता है।

बकरियों में ये परजीवी पूंछ व गूदा के आसपास, जांघों के अंदरुनी भाग की खाल से चिपके हुये पाये जाते हैं। ये बकरी का रक्त पीकर अपना जीवन पूरा करते हैं। त्वचा पर दाद, खाज व खुजली आदि के अतिरिक्त कुछ घातक रोग जैसे पीलिया (लाल पेशाब की बीमारी), थाइलेरियोसिस, बेबेसियोसिस, एनप्लाज्मोसिस। आदि कीटाणुओं से पैदा होने वाले रोगों को फैलाने में भी सहायक है। बकरियों में जूएं (चीचड़) माइट्स परजीवी मुख्य हैं। बकरियों में खाज की आरम्भिक अवस्था में शरीर पर छोटे–छोटे लाल दाने पड़ते हैं तथा खुजली होने के कारण पशु शरीर को खम्भे, दीवार व फेन्सिंग आदि में रगड़ता है।

चीचड़ नमीयुक्त अंधेरे स्थानों पर बाड़ों में छिपी रहती है तथा हजारों की संख्या में जमीन पर अंडे देती है। अधिकतर ये पेट, दानों जाँघों के मध्य भाग, कान तथा पूंछ के नीचे चिपकी रहती है। चीचड़कृत अपेक्षा अधिक हानिकारक होती है क्योंकि यह कुछ रोगों को रोगी पशु से दूसरे स्वस्थ पशुओं तक पहुंचाती है।

रोकथाम :

पानी में दवा मिला के नहलाना –

बकरियों को स्वस्थ रखने व विभिन्न रोगों से बचाने के लिये उनको डिपिंग ही सरल उपयोगी तरीका है। बकरियों को नहलाने के लिये डिपिंग टेंक में 0.2 प्रतिशत का सायोथियान या 0.5 प्रतिशत मैलाथियान का घोल बनाकर नहलाना चाहिये। बकरियों को दवा के पानी से नहलाने के समय निन्न बातों का ध्यान रखना अति आवश्यक है।

1. सभी बकरियों को नहलाने से पहले पानी पिला देना चाहिये।
2. वर्षा या अधिक ठंड के दिनों में नहीं नहलाना चाहिये।
3. नहलाने वाला दिन सूखा।
4. नहलाने का कार्य सुबह ही कर लेना चाहिये।
5. कमजोर व अस्वस्थ पशु को न नहलायें।
6. नहलाने से पहले देख लेना चाहिये कि शरीर पर घाव आदि ना हो।

भुरकाव :

बाहरी परजीवी का प्रकोप होने पर मिथाईल पैराथियान पाऊड़र 1 भाग व 3 भाग छनी हुई राख का मिश्रण परजीवीग्रसित पशु के शरीर पर शाम के समय भुरकाव करना लाभदायक होता है।

पशुओं तथा मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस के कारण, लक्षण, निदान एवं उपचार

अमित कुमार[1], ज्ञान सिंह[2] एवं संदीप कुमार[1]

[1]पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, [2]शैक्षणिक पशु चिकित्सालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

ब्रूसेलोसिस एक संक्रामक बीमारी है जोकि ब्रूसेला नामक बैक्टीरिया के कारण होता है। इस रोग से जानवर तथा मनुष्य दोनों ही बीमार हो सकते हैं। ब्रूसेलोसिस मुख्य रूप से पशुधन को प्रभावित करती है। ब्रूसेलोसिस एक प्रजनन बीमारी है जिससे की मादा पशुओं में गर्भपात एवं नर पशुओं में वृषणों में संक्रमण, आवर्ती बुखार, गठिया दर्द व लेवटी में संक्रमण इत्यादि लक्षण पाए जाते हैं। यह रोग मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में पाया जाता है। यह रोग भेड़ों, बकरियों, घोड़ों, गाय, भैंस, कुत्तों, सुअरों तथा सभी स्तनपायी जीवों को प्रभावित कर सकता है।

पशुओं में ब्रूसेलोसिस फैलने के माध्यम

पशुओं में ब्रूसेलोसिस प्रजनन, संक्रमित पशु के ब्याने के समय सम्पर्क में आने से तथा संक्रमित पशु की जेर खाने से तथा रोग से ग्रसित गाय–भैंस के बछड़ों में जन्म से ही हो सकता है। गाय तथा भैंस में ब्रूसेलोसिस रोग प्राकृतिक संभोग की तुलना में टीका धरवाने पर ज्यादा फैलने का खतरा होता है क्योंकि इस बैक्टीरिया में चलने की क्षमता नहीं होती है तथा यह योनि की दीवारों को भेद नहीं पाता है। परन्तु टीके के द्वारा यह बैक्टीरिया सीधा बच्चेदानी में प्रवेश कर जाता है।

मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस फैलने के माध्यम

मनुष्यों में यह बीमारी दूषित भोजन जैसे की कच्चा मांस और अस्वास्थ्यकर दूध से हो सकती है। यह बैक्टीरिया हवा के माध्यम से या खुले घाव के संपर्क में आने पर भी हो सकता है। पशु चिकित्सकों तथा पशु पालकों में इस रोग के होने की सम्भावना बहुत अधिक रहती है यदि व पशु को ब्याने के समय उपयुक्त बचाव का प्रयोग नहीं करते है। यह रोग ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों की अपेक्षा अधिक होता है क्योंकि गाँवों में आज भी कच्चा दूध पीने का प्रचलन है।

ब्रूसेलोसिस की ऊष्मायन अवधि

ब्रूसेलोसिस की ऊष्मायन अवधि को पांच दिन से पांच महीने की सीमा के साथ अत्यधिक चर माना गया है कुछ रोगियों में एक वर्ष की भी ऊष्मायन अवधि देखी की गयी है। यद्यपि औसतन ऊष्मायन अवधि लगभग दो से चार सप्ताह है।

ब्रूसेलोसिस के लक्षण

क) पशुओं में– संक्रमित जानवरों का पता लगाने का कोई प्रभावी बाह्य तरीका नहीं है। सबसे स्पष्ट संकेत गर्भवती जानवरों में तीसरी तिमाही में गर्भपात तथा कमजोर बछड़ों का जन्म देना है। दूसरे लक्षण जैसे कि दूध का उत्पादन कम हो जाना, गर्भपात और नियत समय पर गर्भधारण न करने की वजह से सामान्य स्तनपान की अवधि में परिवर्तन है। सभी संक्रमित पशुओं में गर्भपात नहीं होता हैं, लेकिन जो आमतौर पर गर्भावस्था के पांचवें और सातवें महीने के बीच होती हैं उनमें गर्भपात के होने की अधिक सम्भावना रहती है। संक्रमित पशु में अमुमन एक बार गर्भपात होता है, लेकिन कुछ पशुओं में भविष्य में भी गर्भपात हो सकता है। संक्रमित पशु से पैदा हुए बच्चों में अव्यक्त संक्रमण हो सकता है, अर्थात् वे संक्रमण जिनका पता तब तक नहीं चलता जब तक कि वे गर्भवती नहीं होती है। ब्रूसेलोसिस के अन्य लक्षणों में प्रजनन क्षमता कम होना, खराब गर्भाधान दर, गर्भाशय में संक्रमण तथा कभी–कभी बढ़े हुए जोड़ों के साथ गाठिया रोग का होना शामिल है।

ख) मनुष्यों में– ब्रूसेलोसिस बीमारी में संक्रमित लोगों में इन्फ्लूएंजा के समान लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोग में आवर्ती बुखार रहता है, जोकि यह कई हफ्तों, महीनों या लंबे समय तक बना रहता है और इसका इलाज न होने पर धीरे–धीरे बाद से बदतर हो सकता है। प्रारंभिक लक्षण थकान, तेज बुखार, ठंड लगना, पसीने से तरबतर होना, जोड़ों में दर्द, अवसाद, पुरानी थकान, आवर्तक बुखार, पीठ में दर्द, वजन कम हो जाना और भूख न लगना आदि हैं। दीर्घकालिक प्रभावों में गठिया, आंतरिक अंगों में सूजन हो

सकती है। इस बीमारी में मृत्यु नहीं होती है किंतु यह एक बहुत ही गंभीर बीमारी है। किसान, पशुपालक, मांस और दुग्ध प्रसंस्करण के कर्मचारी तथा पशु चिकित्सकों में संक्रमण होने की अधिक संभावना होती है क्योंकि वे सीधे संक्रमित जानवरों एवं उनके उत्पादों के संपर्क में आते हैं।

ब्रूसेलोसिस का निदान

इस रोग का पता लगाने के लिए नैदानिक संकेत व लक्षण तथा लेबोरेटरी टेस्ट जैसे कि SAT, ROSE BENGAL, MILK RING, ELISA व PCR इत्यादि करवाए जा सकते हैं।

ब्रूसेलोसिस का संक्रमण मिलने पर क्या करें?

ब्रूसेलोसिस के संक्रमण को रोकने के लिए सभी संक्रमित मवेशियों को संगरोध द्वारा निहित करना तथा संक्रमित पशुओं का वध कर के रोग का प्रसार रोकना चाहिए। यह तब तक किया जाता है जब तक झुंड में यह बीमारी सम्पूर्ण रूप से खत्म नहीं होती है। यदि पशु फार्म की आर्थिक स्थिति मजबूत है तो संक्रमित पशुओं का निक्षेपण अनिवार्य है। नैदानिक परीक्षण का उपयोग झुंड में सभी संक्रमित मवेशियों को खोजने के लिए, संक्रमण के सबसे संभावित स्त्रोत का पता लगाने और निर्धारण करने के लिए किया जाता है। विशेष रूप से महामारी विशेषज्ञ तथा प्रशिक्षित पशु चिकित्सक रोग स्त्रोतों की जांच करते हैं तथा प्रभावित झुंडों में रोग को नियन्त्रण कर दूसरे झुंडों में इसके प्रसार को रोकने की योजना बनाते हैं।

क्या जानवरों में ब्रूसेलोसिस ठीक हो सकता है?

नहीं, पशुओं में ब्रूसेलोसिस इलाज के लिए बार–बार किए गए प्रयास विफल रहे हैं। अधिक सामान्यतः पशुओं में रोग के लक्षण गायब हो जाते हैं परन्तु पशु रोगग्रस्त बने रहते हैं। ऐसे जानवर दूसरे जानवरों तथा मनुष्यों में संक्रमण फैलाते हैं। हालांकि ब्रूसेलोसिस की जटिल प्रकृति के कारण इसका इलाज करना कठिन है, लेकिन एंटीबायोटिक के साथ दीर्घकालिक उपचार को फायदेमंद माना जाता है। ज्यादातर मामलों में, एंटीबायोटिक दवाओं को संयोजन में संक्रमण के खिलाफ अधिक प्रभावी पाया गया है। मनुष्यों में इस बीमारी का उपचार करने के लिए डॉक्सीसाइक्लिन तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन को संयुक्त रूप से 2 से 3 महीने तक दिया जाता है।

क्या ब्रूसेलोसिस से बचा जा सकता है?

हाँ, उचित स्वच्छता विधियों का उपयोग करके ब्रूसेलोसिस से बचा जा सकता है। उचित झुंड प्रबंधन की रणनीति बीमारी से बचाने में भी मददगार हो सकती है। इनमें शामिल हैंः बाहरी पशुओं को झुण्ड में संगरोध अवधि खत्म होने तथा ब्रूसेला की जाँच करके शामिल करना, सटीक रिकॉर्ड बनाए रखना, समय–समय पर इस बीमारी की पशुओं में जांच करते रहना और संभावित या संदिग्ध ब्रूसेलोसिस संक्रमित मवेशियों की छंटनी करना है।

ब्रूसेलोसिस संक्रमण के जोखिम को कैसे कम किया जा सकता है?

चरवाहे, किसानों एवं पशु प्रबंधकों को बछड़े और अन्य क्षेत्रों को साफ और कीटाणुरहित रखना चाहिए। संक्रामक सामग्री जैसे की संक्रमित पशु की जेर तथा स्त्रावों से संक्रमण फैलने का अंदेशा बना रहता है, अतः इनका सही निपटान आवश्यक है। सभी व्यक्तियों को मजबूत रबर या प्लास्टिक के दस्ताने पहनने चाहिए जब भी वे ब्याने वाले पशुओं के संपर्क में आते हैं तथा बाद में साबुन और पानी से अच्छी तरह से हाथों की सफाई करनी चाहिए। कच्चा दूध पीने या अधपका दूध पीने से भी परहेज करना आवश्यक है। अंत में, सबसे अच्छी रोकथाम क्षेत्र के सभी जानवरों को ब्रूसेलोसिस रहित करना है।

ब्रूसेलोसिस का नियंत्रण कैसे करें?

ब्रूसेलोसिस के व्यापक अंतर–प्रजाति संक्रमण को दूर करने के लिए टीकाकरण सबसे प्रभावी रणनीति है। वर्तमान में S19, RB51, B. melitensis Rev, 1, lysate, live vectored वैक्सीन, म्यूकोसल वैक्सीन सबयूनिट और डीएनए वैक्सीन सहित कई टीके ब्रूसेलोसिस के लिए उपलब्ध है। मवेशियों में ब्रूसेला एबॉर्टस स्ट्रेन 19 और आरबी 51 सबसे अधिक प्रचलित टीके हैं। S19 का उपयोग 3 से 12 महीने की मादा बछड़ों में टीकाकरण के लिए किया जाता है। यह टीका गर्भवती मवेशियों तथा नर पशुओं में नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे मादा पशुओं में गर्भपात तथा नर पशुओं में वृषणों का संक्रमण हो जाता है।

कंटाजियस इक्थाइमा–एक संक्रामक ऊँट रोग

दीपक[1], दिनेश गुलिया[1] एवं दिपिन चन्द्र यादव[2]

[1]पशु चिकित्सक, पशुपालन एवं डेयरिंग विभाग, हरियाणा

[2]वैज्ञानिक, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, लुवास, हिसार।

परिचय

ऊंट संक्रामक अछिमा (CCE), ऊँटों में ओर्फ और पुस्टुलर डर्माटाइटिस परिवार के एक पॉक्स वायरस के कारण होती है। यह ऊँटों में त्वचा की एक संक्रामक बीमारी है। इस बीमारी को ऊदिक के नाम से भी जाना जाता है। यह बीमारी भारत समेत दुनियाभर के कई देशों में पाई जाती है। यह बीमारी रोग प्रभावित क्षेत्रों में संक्रमण की तीव्रता, रुग्णता और मृत्यु दर में भिन्नता के साथ विद्यमान है। यह बीमारी बरसात के मौसम में सालाना होती है और युवा ऊँटों को ज्यादा प्रभावित करती है। 1 वर्ष से कम उम्र के ऊँट इस बीमारी से ज्यादा प्रभावित होते हैं। बरसात के मौसम में ऊँटों द्वारा कांटेदार पेड़ों के खाने के कारण मुंह के अंदर व होठों पर घाव हो जाते हैं जिसके कारण वायरस की बढ़ोतरी के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं। ज्यादातर मामलों में इस बीमारी से ऊँटों में कोई मृत्यु नहीं होती है लेकिन जब ऊँटों के बछड़े गंभीर रूप से इस बीमारी से प्रभावित हो जाते हैं तो उनकी चरने और दूध पीने की क्षमता खत्म हो जाती है जिसके कारण भूख की वजह से बछड़ों की मृत्यु हो जाती है और भी गंभीर स्थिति में जब वायरस का प्रकोप पलकों और आंखों तक फैल जाता है तो बछड़े अंधे हो जाते हैं। इस बीमारी के कारण ऊँटों में कई बार मृत्यु दर 9 प्रतिशत तक पहुँच जाती है। नैदानिक रूप से, चेचक–घाव सबसे पहले प्रभावित जानवरों के होठों पर छोटे–छोटे पपल्स के रूप में दिखाई देते हैं, जो उत्तरोत्तर होठों पर पपड़ी के रूप में विकसित हो जाते हैं। उपरोक्त लक्षण होठों के साथ–साथ थूथन, नाक और पलकों पर भी दिखाई देते हैं। कभी–कभी सिर और गर्दन में भी सूजन आ जाती है। यह घाव प्राक्गर्भाक्षेपक और अत्यधिक संवहनी होते हैं और गम, तालु तथा जीभ में भी फै सकते हैं। ऊँट संक्रामक अछिमा की वृद्धि की संभावना से जुड़े प्रमुख कारक वर्ष का मौसम, ऊँट की उम्र, ऊँट की चाल और स्थान और कांटेदार पेड़ों के साथ उनका जुड़ाव है।

संक्रमण के मार्ग

ऊंट संक्रामक अछिमा सभी उम्र के ऊँटों को प्रभावित करती है। यह बीमारी विशेष रूप से चराई के पहले पतझड़ ऋतु में युवा ऊंटों, और रोग–मुक्त ऊंटों के झुंड में ज्यादा पाई जाती है। निस्संदेह, कांटेदार पौधों के खाने से होठों को नुकसान पहुंचता है और चराई करते समय संक्रमण का रास्ता खुल जाता है। यह रोग तेजी से फैलता है और थोड़े समय के भीतर 70–80 प्रतिशत चराई वाले ऊँटों को प्रभावित कर सकता है। ज्यादातर मामलों में बीमारी का प्रारूप हल्का होता है और जानवर 20–25 दिनों के भीतर ठीक हो जाता है।

लाक्षणिक संकेत और घाव

इस बीमारी में त्वचा के घाव कभी–कभी बहुत गंभीर हो जाते हैं। प्रभावित युवा ऊँट खाने के लिए अनिच्छुक होते हैं और उनके स्वास्थ्य में तेजी से गिरावट आती है। इस कारण से पशु चिकित्सा उपचार की तुरंत आवश्यकता होती है। ऊँट संक्रामक अछिमा के मुख्य लक्षण शरीर के तापमान

सिर और गर्दन के ऊपरी हिस्से में सूजन दिखाते हुए तीव्र रूप से प्रभावित युवा ऊंट

में मामूली वृद्धि (38.5–39 डिग्री सेल्सियस) के साथ होंठ, गाल, नाक की त्वचा और पलकों की सूजन है। 1–2 दिनों के बाद छोटे पिंड जो एक बाजरे के दाने के रूप में त्वचा के सूजन वाले क्षेत्रों पर विकसित होते हैं और तेजी से लसीका युक्त फफोलों में बदल जाते हैं। रगड़ने के परिणामस्वरूप जब ये फफोले फट जाते हैं, तब इनमें से निकला हुआ रिसाव त्वचा पर फैल जाता है, जिससे एक विदरित पपड़ी का निर्माण होता है। इस विदर के माध्यम से यह रिसाव बाहर निकलता है और हवा के संपर्क में आने से सूख जाता है। परिणाम स्वरूप, एक सलेटी रंग की दृढ़ पपड़ी बन जाती है जो सूजी हुई त्वचा को ढक लेती है।

होठों पर घाव

मूल्यांकन

उपरोक्त सलेटी रंग की पपड़ियों की सूक्ष्म जांच से पता चलता है कि उनमें विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया विद्यमान होते हैं। ऊँट ऊँट संक्रामक अछिमा वायरस के प्रीसिपिटिनोजेन का खरगोशों में तैयार किए गए गैर–विशिष्ट वायरल प्रीपिलेटिन का उपयोग करके agar gel immunodiffusion (AGID) परीक्षण द्वारा पता लगाया जा सकता है।

उपचार और नियंत्रण

ऊँट संक्रामक अछिमा के विषाणु पर्यावरणीय कारकों के लिए बेहद प्रतिरोधी है। सामान्य परिस्थितियों में संग्रहीत सांद्रता और मोटे चारे पर, यह 270–300 दिनों के लिए व्यवहार्य रहता है। विभिन्न प्रकार की मिट्टी और खाद (जिसका जैव–उपचार नहीं किया गया हो) में यह 120 दिनों तक जीवित रहता है। भिन्न–भिन्न प्रकार के कीटाणुनाशकों के लिए यह विषाणु बहुत प्रतिरोधी है। इस विषाणु के लिए सबसे प्रभावी कीटाणुनाशक कास्टिक सोडा, फिनोल और पोटेशियम परमैंगनेट है। दोहरी सांद्रता में, ये कीटाणुनाशक इस विषाणु को 60° सेल्सियस पर 10–20 मिनट में मार सकते हैं। यह विषाणु उबलते हुए पानी (96–98 डिग्री सेल्सियस) में व्यावहारिक रूप से तुरंत नष्ट हो जाता है। इस विषाणु के प्रतिरोध में अब तक कोई विशिष्ट इम्युनोप्रोफाइलैक्सिस या चिकित्सा विकसित नहीं की गई है। इस बीमारी में एक रोगाणुरोधक मरहम व्यापक रूप से त्वचा के घावों के स्थानीय उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। बीमारी को रोकने के लिए, ऊंटों को कांटेदार पौधों पर नहीं चराना चाहिए। पशु चिकित्सा सेवा को इस संक्रामक बीमारी के लिए उपयुक्त सावधानी बरतनी चाहिए।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

हरियाणा के पशुओं में एम्फीस्टोमिएसिस (रूमन् फ्लूक) के रोग

हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता

पशु चिकित्सक परजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

किसान भाई खेती के साथ–साथ पशुपालन भी करते हैं। इन में गायें, भैंसें, भेड़, बकरी, आदि जानवर मुख्य हैं। कुछ लोगों की तो जीविका ही इन पर निर्भर करती है। इन जानवरों को जिन चारागृहों में भेजा जाता है, वहाँ कुछ घास, पेड़–पौधों की पत्तियों तथा पीने के लिये पानी उपलब्ध होता है। बरसात में सड़क के किनारे गढ्ढों में भी पानी भर जाता है। जिसमें से पशु पानी पी लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे पशु इन जल स्त्रोतों की तरफ ज्यादा रहते हैं, जहाँ वे चरने के साथ गोबर भी करते हैं। इनके गोबर से पानी में रहने वाले घोघों के द्वारा फ्लूक की बिमारी फैलती है।

एम्फीस्टोम (रूमन फ्लूक) :

एम्फीस्टोम एक तरह का फ्लूक (पत्ता कृमि) है जो पशु की आहार नाल में रहता है। यह अनार के दाने जैसा होता है तथा इसका नाप 0.5 से 2 से.मी. तक होता है तथा इनके दोनों और चूशक सकर लगे होते हैं।

जीवन चक्र :

एम्फीस्टोम का अण्डा पशु के गोबर के साथ जल स्त्रोत में प्रवेश करता है जहाँ वह पानी के सम्पर्क में आने के उपरान्त एक मिरासिडियम को जन्म देता हैं। यह मिरासिडियम एक विशेष प्रकार के तश्तरीनुमा जलेबी जैसे घोंघे जिन्हें इन्डोपल्नोरबिस व गायरूलस कहते हैं, में प्रवेश करते हैं। 30–75 दिनों के पश्चात घोंघों में से एम्फीस्टोम का सरकेरी बाहर आता है। यह सरकेरी पास के घास एवं पौधों पर चिपट कर मेटा–सरकेरी में बदल जाता है। यह मेटा–सरकेरी 30 से 180 दिन तक घास पर जीवित रहता है। इस घास को जब पशु चरता है तो मेटा–सरकारी पशु के शरीर में प्रवेश कर आँतों से उल्टा लौटते हुए पशु के रूमन् पेट में बड़ा होकर अपना जीवन–चक्र पूरा करता है।

पशुओं में नुकसान :

अविकसित एम्फीस्टोम जानवर की छोटी आँतों को अन्दर से बुरी तरह छीन देता है, जिससे जानवर बेहद तकलीफ में रहता है तथा उसकी भूख मर जाती है। जानवर की पाचन शक्ति घटने के कारण उसका वनज भी घटने लगता है। छोटी आँत में खून का बहाव व सूजन के कारण जानवर पतले बदबूदार दस्त करने लगता है।

लक्षण :

मेटा–सरकेरी का जानवर के शरीर में प्रवेश करने से लेकर लक्षण नजर आने के बीच के समय को प्री–पेटेन्ट पीरियड कहते हैं और एम्फीस्टोम में यह 56–71 दिन का होता है।

इस बिमारी के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं– भूख न लगना, खून की कमी, नीचे के जबड़े में पानी भरना, कम दुग्ध उत्पादन, गोबर का रंग गाढ़ा हो जाना तथा उसमें अविकसित फ्लूक का मिलना छोटे अनार के जैसे। जानवर की आँखे कन्जकटाइवा पीली–सफेद हो जाती हैं तथा खून की कमी परिलक्षित होती है। ऐसे जानवर का इलाज न करने पर उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

रोकथाम :

इस बिमारी के कारण गाय–भैंस में मृत्यु दर 40–60% तथा भेड़–बकरी में 90% तक होती है। रोकथाम के लिये निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाये।

रोकथाम के लिये इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिये कि जानवर का गोबर पानी में न मिलें, इससे न तो मिरासिडिया बनेंगें और न ही वे घोंघों में पनप पायेंगे।

रोकथाम का सबसे आसान तरीका तो यह है कि गाय के गोबर को गोबर गैस प्लांट में इस्तेमाल किया जाये या उससे क्म्पोस्ट खाद बनाई जाये।

घोंघों की रोकथाम के लिये तालाब आदि में कॉपर सल्फेट 0.1 ppm दवाओं का प्रयोग किया जा सकता है या

फिर जल पक्षी, जो घोंघों को खा जाते हैं जैसे बतख, उनका पालन शुरू किया जाये। इसके अलावा छोटे जाल से घोंघों को पकड़ कर सूखी जगह पर रख दें। इससे वह स्वतः ही मर जाते हैं।

पशुओं को छिछले पानी वाले तालाब, पोखर आदि के किनारे चरने न दें। विशेष रूप से पशुओं के बच्चों को बरसात में बाहर ना चरने दें क्योंकि इस बिमारी का प्रकोप सबसे ज्यादा इन्हीं पर होता है।

बरसात के पश्चात विशेषकर सर्दियों में परजीवियों की जाँच करवायें तथा साथ ही जिन जानवरों को इस बिमारी का खतरा हो उनका 30–40 दिन के विशेषकर सर्दियों में नवंबर से फरवरी के दौरान अन्तराल पर दवाकरण करें।

रोकथाम के बावजूद यदि पशुओं को दस्त लगे तो पशु–चिकित्सक से संम्पर्क कर उचित इलाज कराना चाहिये।

इलाज के लिये ओक्सीक्लोजेबाइड (जैनिल) नामक दवाई 10 मिली.ग्रा. शारीरिक भार अनुसार पशु चिकित्सक की निगरानी में दें।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

भारत में ताजे पानी की मछलियों के गैर–संक्रामक रोग

दीपक[1], सोनू यादव[1] एवं दिपिन चन्द्र यादव[2]

[1]पशु चिकित्सक, पशुपालन एवं डेयरिंग विभाग, हरियाणा

[2]वैज्ञानिक, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, लुवास, हिसार।

परिचय

मछली उत्पादन में वर्तमान बीमारी के मुद्दे बहुत चिंता का विषय है। अन्य जानवरों की तरह, मछलियां भी विभिन्न बीमारियों से पीड़ित हो सकती है। प्रत्येक प्रकार की मछली में अलग–अलग प्रकार के रोगजनक और परजीवी पाए जाते हैं। मीठे पानी में मछली उत्पादन दुनिया के विभिन्न हिस्सों में कई लोगों के लिए प्रोटीन का एक प्रमुख स्रोत है। अपरिपक्व मछलियों में रोग मछली मृत्यु दर का मुख्य कारण है। यह समस्या हमारे देश की मछली जैव विविधता को भी प्रभावित करती है। भारी जल प्रदूषण और रोगजनक भार ताजे पानी की मछलियों में बीमारियों का कारण बनते हैं और फलस्वरूप ताजे पानी के मत्स्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण वित्तीय हानि होती है।

हर साल मछली रोग मछली उत्पादन की दर में गिरावट का कारण बनता है। आमतौर पर, अधिकांश मछली रोग संक्रामक होते हैं। इसी कारण यदि एक मछली एक रोगजनक का वहन करती है तो वह इस रोग को आसानी से अन्य मछलियों में फैला सकती है। मछलियों में आम तौर पर दो तरह की बीमारियाँ पाई जाती हैं– संक्रामक बीमारियाँ और गैर–संक्रामक बीमारियाँ। संक्रामक बीमारियां विभिन्न प्रोटोजोआ, कवक, बैक्टीरिया और वायरस के कारण होती है जबकि गैर–संक्रामक बीमारियां विभिन्न विटामिन और खनिजों की कमी के कारण होती है।

ताजे पानी की मछलियों में पाए जाने वाले गैर संक्रामक रोग

विटामिन–सी की कमी : विटामिन–सी की कमी ताजे पानी की मछलियों की एक सामान्य बीमारी है। मेजबान प्रजातियां पंक्टैटस, तिलापिया, सिरहिना मृगला, एल–कैल्केरिफर हैं।

लक्षण :

पंक्टैटस– कम वृद्धि, स्कोलियोसिस, लॉर्डोसिस, रोग की संवेदनशीलता में वृद्धि, टूटी कमर का सिंड्रोम, आंतरिक और बाहरी रक्तस्राव, फिन कटाव, एनोरेक्सिया, अनियमित तैराकी व्यवहार।

सी–पंक्टैटस– स्कोलियोसिस, लॉर्डोसिस, एनीमिया, विकृत गिल फिलामेंट्स।

तिलापिया– स्कोलियोसिस, लॉर्डोसिस, विकास में कमी/घाव की मरम्मत मे कमी, आंतरिक/बाहरी रक्तस्राव, दुम का फटना, एक्सोफ्थेल्मिया, एनीमिया, अंडाणु की अल्पता।

सिरहिना मृगला– वृद्धि कम, मृत्यु दर, स्कोलियोसिस, लॉर्डोसिस, हाइपोक्रोमिक मैक्रोसाइटिक एनीमिया।

एल–कैल्केरिफर– कम वृद्धि, गहरे रंग, संतुलन की हानि, दुम का फटना, रक्तस्रावी गलफड़, छोटा ओपेरकुलम, छोटा स्नाउट, एक्सोफथेल्मिया, लघु शरीर, नाजुक गिल फिलामेंट्स और क्लब के आकार का गिल लैमेला, जिगर का वसायुक्त अधः पतन, त्वचा रक्तस्राव।

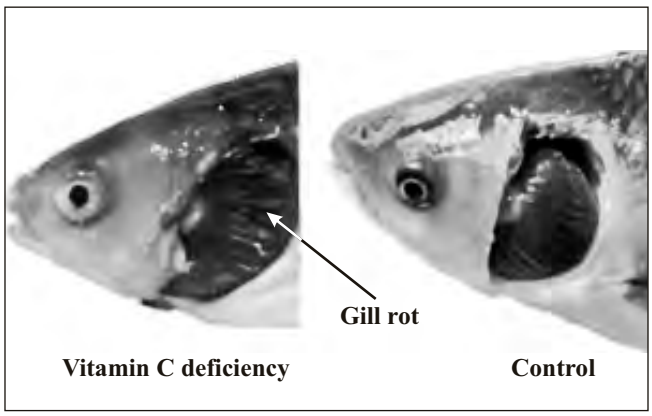

विटामिन–ई की कमी :

फोलिक एसिड की कमी के लक्षण :

पंक्टैटस– एनोरेक्सिया, मृत्यु दर में वृद्धि, सुस्ती, कम वृद्धि दर, कम हेमटोक्रिट।

लाबियो रोहिता– विकास और हेमेटोक्रिट में कमी।

सी–बैट्रैचस– एनोरेक्सिया, विकास में कमी, शरीर के रंग का फीका पड़ना, गिल्स और यकृत का पीलापन।

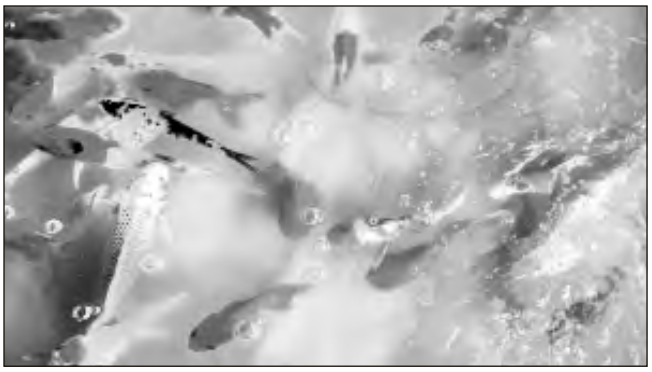

फास्फोरस की कमी:

फास्फोरस की कमी के लक्षण:

सी–कार्पियो– कम वृद्धि, खराब फीड दक्षता, अस्थि विसंक्रमण, कंकाल की विकृति, पसलियों की असामान्य कैल्सीफिकेशन और पेक्टोरल फिन का कमजोर पड़ना, कपाल विकृति, आंत की वसा में वृद्धि।

आई–पंकटस– कम हुई वृद्धि, खराब फीड दक्षता, हड्डियों की डी–मिनिरलाइजेशन।

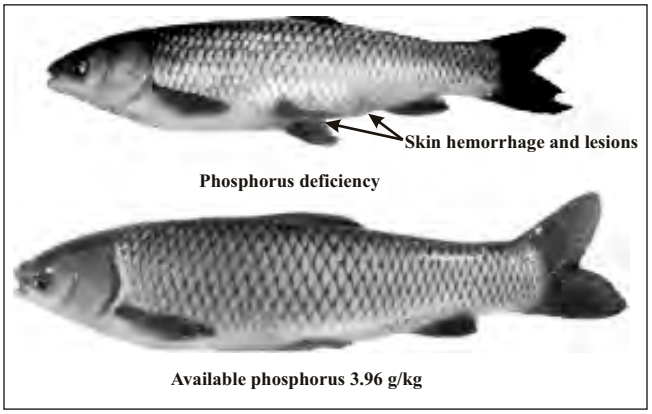

पैंटोथेनिक एसिड की कमी– पैंटोथैनिक एसिड की कमी से प्रभावित होने वाली मछलियों की मुख्य प्रजातियाँ सी–कार्पियो, आई–पंक्टेटस, एल–कैल्केरिफर हैं।

पैंटोथैनिक एसिड की कमी के लक्षण :

सी–कार्पियो– एनोरेक्सिया, कम हुई वृद्धि, सुस्ती, रक्ताल्पता, त्वचा का रक्तस्राव और एक्सोफाल्मिया।

आई–पंक्टैटस– एनोरेक्सिया, संयोजित गिल्स, त्वचा, निचले जबड़े और सिर का घिसना, एनीमिया।

एल–कैल्केरिफर– एनोरेक्सिया, फीड की दक्षता का कम होना, वजन बढ़ना, रंग का गहरा होना, असामान्य तैरना, रक्तस्रावी ओपरकुलम, पेल्विक फिन का घिसना, संयोजित गिल्स।

निष्कर्ष

अन्य जानवरों की तरह, मछलियां भी विभिन्न बीमारियों से पीड़ित हो सकती हैं। पिछले वर्षों की तुलना में आजकल मीठे पानी की प्रणाली अधिक प्रदूषित है। उपरोक्त कारण की वजह से मछली परजीवी और रोगजनकों में तेजी से वृद्धि होती है। नदी क्षेत्र की मछलियों के रोगों को नियंत्रित नहीं किया जा सकता, लेकिन तालाबों और हैचरी में मछलियों के रोगों को उचित और पर्याप्त प्रयासों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अधिकांश ग्रामीण किसान जलीय कृषि और मछली स्वास्थ्य प्रबंधन के बारे में बहुत कम जानकारी रखते हैं। उनके पास मत्स्य प्रबंधन कौशल में सुधार करने के अपर्याप्त अवसर हैं और वे आमतौर पर मछलियों की बीमारियों की समस्याओं का प्रभावी ढंग से जवाब नहीं दे पाते हैं। उनमें से अधिकांश मछलियों के रोगों के सामान्य नैदानिक संकेतों को नहीं समझते हैं। इसलिए, सरकार को मत्स्य व्यवसाय में लगे कम शिक्षित किसानों की उपर्युक्त समस्या को हल करने के लिए सक्रिय होना होगा।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

हरियाणा के पशुओं में सिस्टोसोमिएसिस और फैसियोलिएसिस के रोग

हरदीप कलकल, सुखदीप वोरा एवं स्नेहिल गुप्ता

पशु चिकित्सक परजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

किसान भाई खेती के साथ–साथ पशुपालन भी करते हैं। प्रत्येक घर में 2–4 गाय व बैल जरूर मिल जायेंगे। कुछ लोग बकरी पालन को भी अपनी जीविका का जरिया बनाये हुए हैं तो हमारे आदिवासियों में सुअर पालने की विशेष प्रथा है। पशुओं को चराने गांव के बाहर जहां घास पेड़–पौधों पीने के लिये पानी उपलब्ध कराया जाता है। बरसात में सड़क के किनारे गढ्ढ़ों, छोटे नालों, नदी–नाला, तालाब के आसपास घास होती है जिन्हें वे खाते हैं। अन्य ऋतुओं में यह घास स्थाई जल स्त्रोतों के आसपास ही सिमटकर रह जाती है जिससे हमारे पशु इन्हीं जल स्त्रोतों की तरफ ज्यादा रहते हैं जहां वे चरने के साथ–साथ मल–मूत्र का त्याग करते हैं एवं पानी को पीते हैं। इसी कारण पशुओं का मल–मूत्र इन जल स्त्रोतों में मिल जाता है जो आगे चलकर फ्लूक की बीमारी का कारण बनता है। सुअर को भी पशुपालक घर से बाहर घूमने व खाने के लिये खुला छोड़ देते हैं। यह पोखर में घंटो पड़े रहते हैं और फ्लूक की बीमारी से संक्रमित होते हैं। भेड़, बकरी को चरवाहे भोजन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान व एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में ले जाते हैं जिससे भेड़, बकरी दूसरी जगहों से फ्लूक ग्रहण कर लेती है और दूसरे पोखर आदि से अन्य पशुओं में फ्लूक की बीमारी फैलाने का कारण भी बनती है।

क्या है फ्लूक की बीमारी

गाँव के जल स्त्रोतों में घोंघे होते हैं जो कि फ्लूक की बीमारी फैलाते हैं। उथले व अस्थाई पानी के स्त्रोतों में दो तरह के घोंघे पाये जाते हैं। एक छोटे शंख आकार (लगभग 0.2–1.5 से.मी.) के जिसे लिम्नीया ल्यूटोला कहते हैं व दूसरा तशतरीनुमा आकार (0.5–2.0 से.मी.) के जिसे इन्डोपल्नोरबिस एकजूटस कहते हैं। ये दोनों ही घोंघे दो प्रकार की फ्लूक की बीमारी फैलाते है।

सिस्टोसोमिएसिस

सिस्टोसोम कृमि चपटे परन्तु लम्बाकार होते हैं व पशुओं की रक्तवाहिनी में पाये जाते हैं। मादा पर्णकृमि से अण्डे मल/गोबर के साथ बाहर आ जाते हैं व पानी के सम्पर्क में आने के उपरांत एक मिरासिडियम को जन्म देते है। यह मिरासिडियम पानी में रहने वाले लिम्नीया ल्यूटोला या इन्डोपल्नोरबिस एकजूट घोंघों के शरीर में प्रवेश कर अपना आकार–प्रकार बदलते हैं और अंत में सरकेरिया के रूप में घोंघे से बाहर आ जाते है। विशेष बात यह है कि एक मिरासिडियम यानि एक अण्डा लगभग 500 से 10,000 सरकेरिया को जन्म दे सकता है और गाय के एक बार के गोबर में दस हजार से एक लाख तक अण्डे हो सकते हैं।

सिस्टोसोम का सरकेरिया पशु की त्वचा द्वारा शरीर में प्रवेश करता है। यह कृमि फेफड़े, यकृत आदि से होता हुआ आंतों की रक्तवाहिनी में अण्डे पैदा करते हुए अपना जीवन चक्र पूरा करता है और बीमारी का कारण होता है। दुर्भाग्य की बात है कि पर्णकृमि का जीवन काफी लम्बा होता है और यह शरीर में एक से पांच साल तक जीवित रह सकते हैं।

सिस्टोसोमा नेजेल :

यह एक प्रकार का सिस्टोसोमा होता है जो पशु की नाक में फोड़े पैदा करता है और इस बीमारी को 'सुन्नसुन्ना' नगाड़ा या स्नोरिंग डिसीज कहते हैं।

फेसियोलिएसिस :

पशुओं में लिवर फ्लूक या फेसियोलिएसिस की बीमारी घोंघों द्वारा होती है। यह भी हरी पत्तियों व घास पर सरकेरिया बनता है। यह भी घोंघा के कारण होता है उसे कहते है।

लिम्नियां एक्यूमिनेटा :

लिम्नियां एक्यूमिनेटा (0.2–3.0 सी.एम.) कहते हैं। यह जल के स्थाई स्त्रोतों में ही पाया जाता है अस्थाई स्त्रोतों में नहीं। पानी की कमी होने पर जब पशु इन स्थाई जल स्त्रोतों पर अपनी पानी की आवश्यकता के लिये जाता

है उस समय या वहां की घास को खाने पर वह लिवर फ्लूक से पीड़ित हो जाता है।

लक्षण :

पशु में इन बीमारियों के लक्षण समान हैं। छोटी उम्र व जवान पशु रोग से ज्यादा ग्रसित होते हैं। पशु का वजन कम हो जाता है। उसको दस्त लगने लगते हैं जो 3–4 दिन में ठीक होकर पुनः कुछ दिन बाद शुरू हो जाते हैं। खून की कमी, नीचे के जबड़े में पानी भरना, कम दूध उत्पादन आदि लक्षण परिलक्षित होते है। ऐसे पशु का इलाज न होने पर उसकी मृत्यु हो सकती है।

रोकथाम :

यह दोनों बीमारियां हमारे सभी पशु गाय, भैंस, बकरी, भेड़, ऊंट, घोड़ा, सुअर, कुत्ता आदि को होती हैं। परंतु अनुसंधानों से पता लगा है कि पर्णकृमि के अण्डे अधिक मात्रा में गाय, भैंस के गोबर में ही होते हैं और वही इन बीमारियों को फैलाने का एक बड़ा कारण है। रोकथाम का सबसे सरल उपाय तो यही है कि गाय और भैंस का गोबर जहां भी हो इकट्ठा कर लिया जाये और उसको गोबर गैस प्लांट में या वर्मी कम्पोस्ट खाद बनाने में उपयोग हो। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाये कि पशु का मल पदार्थ, गोबर सहित जल स्त्रोत में न मिले जिससे मिरासिडियम न तो बनेंगे और न ही घोंघों में पनप पायेंगे।

गांव में बतख व अन्य जल–पक्षी पाले जा सकते हैं जो घोंघों को खाते हैं। छोटे जाल या मच्छरदानी के कपड़े का उपयोग करके घोंघों को पकड़कर सूखी जगह पर रखने पर वह स्वतः 2–3 दिन में ही मर जाते हैं।

पशुओं को विशेष रूप से बरसात में पोखर, नदी नाले के किनारे की घास खाने न दें व इसके मल–मूत्र को तालाब, पोखर के पानी में न मिलने दें। विशेष तौर से पशुओं के बच्चों को बरसात में चरने न भेजें क्योंकि बीमारी का सबसे ज्यादा प्रकोप इन्हीं को होता है।

इस रोकथाम के साथ पशुओं में दस्त लगने पर पशु चिकित्सक से संपर्क करके उचित उपचार कराना चाहिये।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

सुअर पालन में आहार प्रंबधन का महत्त्व

दीपक[1], सोनू यादव[1] एवं दिपिन चन्द्र यादव[2]

[1]पशु चिकित्सक, पशुपालन एवं डेयरिंग विभाग, हरियाणा

[2]वैज्ञानिक, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, लुवास, हिसार।

परिचय

सुअरों के आहार में रेशे की आवश्यकता गाय एवं भैसों की तुलना में कम होती है। व्यस्क सुअर युवा सुअरों की तुलना में रेशेदार आहार का उपयोग बेहतर तरीके से कर सकते हैं। आहार में ऊर्जा एवं प्रोटीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

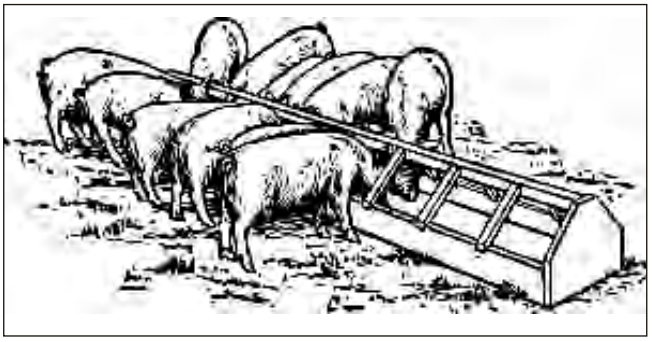

आहार के गुण :

- आहार में ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन्स एंव लवणों की सही मात्रा होनी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप आहार संतुलित बन सके।
- आहार या फीड सुअर की अवस्था के अनुरूप तैयार किया जाना चाहिए।
- आहार में प्रयोग होने वाले सभी स्त्रोत उत्तम क्वालिटी के साथ–साथ साफ–सुथरे भंडारण/स्थान पर संग्रह किये जाने चाहिए।
- आहार को सही मात्रा में एवं साफ–सुथरे स्थान/खोर पर प्रदान किया जाना चाहिए।

आहार प्रबंधन के फायदे :

- नवजात सुअरों का विकास तेजी से होता है।
- मृत्युदर में कमी आती है।
- बीमारियों से बचाव एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है।
- सही आहार प्रबंधन कुल लागत को भी कम करता है जिससे मुनाफा अधिक होता है।

सुअर आहार में तत्त्वों की आवश्यकाता :

	अवस्था		
	वीनस	बढ़ रहे सुअर	व्यस्क
वजन	5–12 कि.ग्रा.	12–50 कि.ग्रा.	50–100 कि.ग्रा.
आहार में प्रोटीन	22%	18%	14%
ऊर्जा (कि.कैलोरी/कि.ग्रा. आहार)	3500	3500	3300
कैल्शियम	0.80%	0.65%	0.50%
फास्फोरस	0.60%	0.50%	0.40%
विटामिन ए (इन्टरनेशनल यूनिट)	2200	1750	1300
विटामिन डी	220	200	125

विभिन्न वर्गों के लिए आहार :

	क्रीप राशन	बढ़ रहे पशु (ग्रोंअर)	फीनिशर
मूंगफली खल	22	20	15
मक्की	50	–	–
जौ	–	25	20
गेहूँ चोकर	–	–	25
चावल की भूसी	10	40	22
शीरा	05	05	10
मछली का चूरा	10	07	05
खनिज मिश्रण	02	02	02
साधारण नमक	01	01	01

प्रजनक सुअरों के लिये विभिन्न आहार :

	आहार		
तत्त्व (किलो ग्राम)	I	II	III
मक्की	50	28	30
गेहूं चोकर	27	25	30
मूंगफली खल	15	20	20
गेहूँ	–	20	–
चना/दाल चूनी	–	–	08
मछली की खल	5	4	–
खनिज मिश्रण	2	2	2
साधारण नमक	1	1	1

ऊँट प्रजाति के दूध का महत्व एवं उपयोगिता

राजेन्द्र यादव[1], पंकज कुमार[2] एवं अमित सांगवान[1]

[1]हरियाणा पशु विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़ एवं [2]पशु रोग जाँच प्रयोगशाला, रोहतक
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

प्राचीन समय से ही दूध मानव जाति के भोजन का एक अभिन्न भाग रहा है। पालतु पशुओं को मुख्य रूप से दूध, माँ एवं बोझा ढोने के लिए पाला जाता रहा है तथा खासकर दूध उत्पादन के लिए गाय एवं भैंस प्रजाति के पशुओं का महत्व रहा है। दूध उत्पादन एवं खपत के मामले में भारत का पूरे विश्व में पहला स्थान है तथा पूरे विश्व लगभग 16 प्रतिशत दूध भारत में उत्पादित होता है। भारत देश में दूध उत्पादन 3.3 प्रतिशत जबकि दूध की खपत 5 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रही है। जो कि मुख्यतः गाय एवं भैंस प्रजाति के पशुओं से पूरी की जा रही है। चूंकि दूध की खपत इसके उत्पादन से ज्यादा गति से बढ़ रही है इसलिए हमें दूध के अन्य विकल्प ढूँढने की जरूरत है ताकि हर क्षेत्र में दूध उपलब्ध करवाया जा सके और माँ एवं खपत के बीच की दूरी को कम किया जा सके। मौसम में विविधता की वजह से अतिशुष्क और अतिशीतित क्षेत्रों में दूध की मांग पूरी नहीं हो पाती है, इसलिए ऐसे क्षेत्रों में ऐसे दूध उत्पादक जानवरों की जरूरत है जो कि माँग को पूरा कर सकें और साथ ही पौष्टिक भी हो। इसलिए ऊँट एक बेहतर विकल्प है जो कि इस प्रकार के क्षेत्रों में पाया जाता है। एशिया और अफ्रीका महाद्वीप में ऊँट बहुतायत में पाये जाते है और इनमें इसकी संख्या मुख्यतः चीन, मंगोलिया, सोवियत संघ रूस, भारत, पाकिस्तान, सूडान, सोमालिया, नाइजीरिया, पश्चिमी सहारा, मिस्त्र, लीबिया और अफगानिस्तान आदि क्षेत्रों में अधिक है। पूरे विश्व में ऊँट प्रजाति सबसे ज्यादा सोमालिया में पाई जाती है। भारत में यह मुख्यतः राजस्थान, गुजरात के मरूस्थलीय भागों, जम्मू और कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र एवं हरियाणा के दक्षिणी हिस्सों में पायी जाती है।

ऊँट की प्रजातियाँः

विश्व के विभिन्न भागों में ऊँट की कई प्रजातियाँ पाई जाती है, लेकिन भारत में ज्यादातर इसकी दो प्रजातियाँ ही पाई जाती है। ''बैकटेरियान प्रजाति'' मुख्यतः ठण्डे प्रदेशों जैसे की जम्मू और कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र की नोबरा घाटी में पाई जाती है और इसके शरीर में दो कूबड़ होते हैं। ''ड्रोमैडरी प्रजाति'' मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात के मरूस्थलीय भागों एवं हरियाणा के दक्षिणी भाग में पाई जाती है और इसके शरीर में एक ही कूबड़ होता है।

ऊँट प्रजाति में दूध उत्पादन एवं दूध देने की अवधिः

वैज्ञानिक तरीके से प्रबंधन, रख रखाव एवं उच्च गुणवत्ता के भोजन के द्वारा ड्रोमैडरी प्रजाति की ऊँटनी से प्रतिदिन 9–14 लीटर तथा 16 से 18 महीने की अवधि में 2722–3629 लीटर तक दूध प्राप्त किया जा सकता है। मरूस्थलीय परिस्थितियों में भी यह प्रजाति 9 महीने की अवधि में औसतन 1134 से 1588 लीटर तक दूध दे सकती हैं बैक्टेरियन प्रजाति की ऊँटनी 6 से 18 महीने की अवधि में औसतन 800 से 1200 लीटर का उत्पादन कर सकती है। सामान्यतः ड्रोमैडरी प्रजाति की ऊँटनी की दूध देने की क्षमता बैक्टेरियन प्रजाति की ऊँटनी के दूध में वसा की मात्रा अधिक पाई जाती है क्योंकि यह ठण्डे वातावरण में रहते हैं। ऊँटनी से दिन में 6 से 8 बार तक दूध का दोहन किया जा सकता है।

ऊँटनी के दूध की विशेषताएँः

ऊँटनी के दूध में सभी आवश्यक पोषक तत्व मौजूद होते हैं इसलिए मरूस्थलीय क्षेत्रों में यह एक बेहतर विकल्प है। ऊँटनी का दूध सफेद रंग का होता है और स्वाद में थोड़ा खारा होता है। ऊँटनी के दूध का संयोजन गाय और बकरी के दूध जैसा ही होता है लेकिन इसमें गाय के दूध की तुलना में पानी और प्रोटीन की मात्रा अधिक लेकिन कुल ठोस और वसा की मात्रा कम होती है। विटामिन और खनिज इसमें प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। ऊँटनी के दूध में वसा और कुल ठोस का अनुपात लगभग 31 प्रतिशत होता है जो कि गाय के दूध के बराबर (32 प्रतिशत) ही है, लेकिन भैंस के दूध (42 प्रतिशत) से काफी कम होता है। ऊँटनी के

दूध का सामान्य संयोजन इस प्रकार होता हैः–

पानी–	86–88 प्रतिशत
वसा–	2.9–5.4 प्रतिशत
दुग्धशर्करा–	3.3–5.8 प्रतिशत
प्रोटीन–	3.0–3.9 प्रतिशत
खनिज–	0.6–1.0 प्रतिशत

अम्लीयता (प्रतिशत दुग्धिक अम्ल)– 0.13–0.21 प्रतिशत

ऊँटनी के दूध के औषधीय गुणः

ऊँटनी के दूध में रक्षात्मक प्रोटीन पायी जाती है जो कि रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है। इसमें जस्ता भी पाया जाता है, जो कि शरीर में कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक है। मरूस्थलीय क्षेत्रों में इस दूध का उपयोग पीलिया, जलोदर, क्षयरोग, दमा, खून की कमी एवं बवासीर आदि के ईलाज में किया जाता है। विटामिन एवं खनिज की प्रचुर मात्रा एवं कम वसा के अलावा ऊँटनी का दूध इन्सुलिन का भी एक अच्छा स्त्रोत है, इसलिए इसका उपयोग मधुमेह के रोगियों के लिए भी किया जाता है। इन सभी के अलावा हैपेटाइटिस (यकृतशोध) के मरीजों में भी ऊँटनी का दूध लाभप्रद बताया जाता है।

ऊँटनी के दूध के उत्पादः

जिन क्षेत्रों में ऊँट पाये जाते हैं वहाँ पर ऊँटनी के दूध का प्रयोग डेयरी खाद्य पदार्थ बनाने में भी किया जाने लगा है। हमारे देश में राष्ट्रीय ऊँट अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर (राजस्थान) राष्ट्रीय स्तर पर ऊँटों के विकास के लिए कार्य कर रहा है। यह संस्थान अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर ऊँटनी के दूध से विभिन्न उत्पाद बनाने में सफलता प्राप्त कर चुका है। इन उत्पादों में सुगंधित दूध, कुल्फी, आइसक्रीम, किण्वित दुग्ध उत्पाद, बीज आदि प्रमुख हैं, तथा संस्थान में बिक्री के लिए उपलब्ध भी है। यह उत्पाद लोगों द्वारा बहुत पंसद भी किए जा रहे हैं। इसके अलावा पनीर, खोआ, गुलाबजामुन, पाउडर, क्रीम एवं अन्य उत्पादों के विकास पर भी इस संस्थान में कार्य चल रहा है। जो लोग ऊँट पालन करते हैं, वो ऊँटनी के दूध को खीर बनाने के लिए भी इस्तेमाल करते हैं।

निष्कर्षः

हमारे देश में दूध की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए ऊँटनी का दूध एक बेहतर विकास साबित हो सकता है, खासकर रेगिस्तानी भागों में यह दूध की कमी को पूरा करने में कारगर साबित हो सकता है। लेकिन अभी भी इस पर काफी अनुसंधान बाकी है ताकि इस दूध का अधिकतम उपयोग किया जा सके और इसका आयुकाल बढ़ाया जा सके। ऊँटनी के दूध में उपलब्ध घटकों की गुणवत्ता और चिकित्सकीय अनुप्रयोगों के कारण इसका उपयोग डेयरी खाद्य पदार्थ बनाने में किया जाता है। लोगों को जागरूक करने की जरूरत है, ताकि वे इस ''रेगिस्तान के जहाज'' की अहमियत को समझ सकें और ऊँट के संरक्षण और पालन पर जोर दें।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

ग्याबिन भैसों का रखरखाव

दीपिका कटारिया[1] एवं ज्योति शुन्थवाल[2]

[1]पशु औषधि विज्ञान विभाग, [2]हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भारतवर्ष में डेयरी पालन का बहुत महत्त्व है। पशुपालन में गाय भैंस पालन एक अहम हिस्सा है। डेयरी पालन में ग्याबिन भैंसों की देखभाल अत्यंत जरूरी है ताकि पशुपालक को डेयरी पालन में मुनाफा हो और पशु से हर साल एक स्वस्थ कटड़ा या कटड़ी पैदा हो। पशुपालक की आमदनी को दोगुना करने के लिए जरूरी है कि गाय या भैंस से हर वर्ष एक स्वस्थ नवजात पशु पैदा हो और भैंस की उत्पादक क्षमता अच्छी रहे। गर्भधारण से भैंस के ब्याने तक के बीच के समय को गर्भकाल कहते हैं। यह भैंसों में 10 महीने का होता हैं। गर्भधारण की पहली पहचान भैंस में मदचक्र का बंद होना है, परंतु कभी कभी शांत मद होने के कारण गर्भधारण का ठीक से पता नहीं चलता, अतः पशुपालक भाइयों को चाहिए कि वे गर्भधारण की सटीक जानकारी के लिए पशुचिकित्सक से भैंस की गर्भावस्था की अवश्य जाँच करायें।

ग्याबिन भैंस के रखरखाव में ध्यान रखने वाली बातें :

भैंसों में कृत्रिम गर्भधारण करने के तुरन्त बाद ध्यान रखें कि पशु को ज्यादा दूर तक पैदल न चलायें, ऐसा करने से पशु में गर्भ नहीं रुकता। उसे मारें–पीटें या भगायें नहीं। पशु के गर्मी में आने के 12 से 18 घंटे के भीतर कृत्रिम गर्भधारण करा ले। दिन के ठन्डे काल यानी सुबह या शाम को ही कृत्रिम गर्भधारण कराये। उसके बाद उसे ठंडा पानी पिलायें, नहलायें और कम से कम दो हफ्ते तक ठंडी जगह में बांधे। भैंस को हरा चारा खिलायें तथा दाने में 50 ग्राम खनिज लवण जरूर मिलायें। कृत्रिम गर्भधारण के 20–22वें दिन तक भैंस पर कड़ी नजर रखें कि दोबारा गर्मी में तो नहीं है। गर्भाधान के 2 महीने बाद गाभिन होने की जांच जरूर करायें।

ग्याबिन भैंसों की देखभाल कैसे करे :

ग्याबिन भैंसों की देखभाल के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों पर खास ध्यान रखा जाना चाहिए–

- पोषण प्रबंध
- सामान्य प्रबंध

पोषण प्रबंध :

ग्याबिन भैंसों के पोषण पर पशुपालक को खास ध्यान रखना चाहिए, ऐसा न करने पर पेट में पल रहे बच्चे का पूर्ण विकास नहीं हो पातासाथ ही ब्याने के बाद भैंस से भी अच्छी पैदावार नहीं मिल पाती। अगर पशु पोषण का ध्यान न रखा जाये तो ब्याने के बाद पशुओं में अनेकों गर्भ व उत्पादन से जुड़ी बीमारियाँ हो सकती है जिससे पशुपालक को नुक्सान उठाना पड़ सकता हैं। 10 महीने के गर्भकाल में खासकर आखिरी के 3 महीनों में पशु के खानपान का ध्यान रखना जरूरी है क्योंकि आखरी के 3 महीनों में ही बच्चे का सबसे अधिक विकास होता है।

पहले 7 महीनों में एक तिहाई बच्चे का विकास ही होता है लेकिन बाद में आखिरी तीन महीनों में बच्चे का सबसे अधिक विकास होता है, इसलिए भैंसों में गर्भकाल के अंतिम तीन महीने के दौरान शरीर के रखरखाव के लिए 1.5 से 2 किलोग्राम दाना मिश्रण के साथ गर्भावास्ता के लिए 1.5 किलोग्राम अतिरिक्त दाना मिश्रण अथवा हरा चारा होने की स्थिति में रोजाना 30 किलोग्राम हरा चारा व 2 किलोग्राम दाना मिश्रण रोजाना दिया जाना चाहिए।

गाभिन भैंसों का दूध ब्याने से 55–60 दिन पहले जरूर सुखा लेना चाहिए ताकि पशु अपने शरीर को आने वाले ब्यांत के लिए तैयार कर सके और पशु के ब्याने के समय उसके शरीर का वजन एवं बनावट अच्छी रहे। इसी समय भैंस अगले ब्यांत में अच्छा दूध देने के लिये अपना वजन बढ़ाती है तथा पिछले ब्यांत में हुई पोषक तत्वों की कमी को भी पूरा करती है। अधिक दूध देने वाले पशुओं को गर्भवस्था में 8वें माह से अथवा ब्याने के 6 सप्ताह पहले उनकी दुग्ध ग्रंथियों के पूर्ण विकास के लिए इच्छानुसार दाने की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। इसके लिए भैंसों में 3

किलो दाने की मात्रा पशु की निर्वाह आवश्यकता के अतिरिक्त दिया जाना चाहिए। इससे पशु अगले ब्यांत में अपनी क्षमता के अनुसार अधिकतम दुग्धोत्पादन कर सकते हैं।

ग्याबिन भैंसों के लिए संतुलित दाना मिश्रण बनाने की विधि–

ग्याबिन भैसों को सम्पूर्ण आहार देना जरूरी हैं। ऐसी स्थिति में पशुओ का दाना मिश्रण को सभी पोषक तत्वों को ध्यान में रख कर बनाया जाना चाहिए जैसे कि कच्ची प्रोटीन, कुल पाचक तत्व और चयापचयी उर्जा आदि। पशु पालक निम्नलिखित दिए गए उदहारण से पशुओं के लिए दाना मिश्रण बना सकते हैं परन्तु यह इस पर भी निर्भर करता है कि कौन–सी चीज सस्ती व आसानी से उपलब्ध है।

1. मक्का / जौ / जई, बाजरा, गेंहू आदि	40 किलो
बबिनोला, सरसों, मूंगफली, सोयाबीन आदि की खल	35 किलो
गेहूं की चोकर, डालो की चूरी इत्यादि	22 किलो
खनिज मिश्रण	02 किलो
साधारण नमक	01 किलो
कुल	100 किलो

गर्भावस्था के समय भैंस को संतुलित एवं सुपाच्य चारा खिलाना चाहिए। गर्भावस्था के समय भैंस को खनिज लवण और विटामिन्स अवश्य देना चाहिये।

गाभिन भैंसों की सामान्य प्रबन्ध

ग्याबिन भैसों में आवास का खास ध्यान रखा जाना चाहिए। ग्याबिन भैंस का आवास का स्थान साफ सुथरा, आराम दयाक होना चाहिए। भैंस को अनचाहे गर्भपात से बचाने के लिए उसे किसी भी प्रकार के तनाव से बचाया जाना चाहिए। गर्भावस्ता के दौरान कोई टीकाकरण नहीं करना चाहिए। पशुपालक ग्याबिन भैंसों को गर्भावस्ता के आखिरी के दिनों में दूसरी भैंसों से अलग रखे। भैंस का बाड़ा साफ–सुथरा व फर्श समतल व कच्चा होना चाहिए। बाड़ा उबड़–खाबड़ तथा फिसलन वाला नहीं होना चाहिए। पशु का आवास हवादार व प्रतिकूल वातावरण से जैसे अत्यधिक सर्दी, गर्मी, बरसात आदि से बचने योग्य होना चाहिए। भैंस को हमेशा स्वच्छ पीने का पानी का प्रबंध कर। गर्भावस्था के अंतिम दिनों में भैंस को रेल या ट्रक से नहीं ढोना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे लम्बी दूरी तक पैदल न चलाये। अंतिम दो महीनो में भैंस को तालाब में नहलाने के लिए न ले जाए, ऐसा करने से बच्चेदानी में बल पड़ सकता है। ग्याबिन भैंस को ऐसे पशुओं से दूर रखना चाहिए जिनका गर्भपात हुआ हो। सूरज की किरणों से भैंस के शरीर में विटामिन डी 3 बनता है जो कैल्शियम के संग्रहण में सहायक है जिससे पशु को बयाने के उपरांत दुग्ध ज्वर से बचाया जा सकता है। गर्भावस्था के अंतिम माह में भैंस को पशु चिकित्सक द्वारा विटामिन इ व सिलेनियम का टीका लगवाए ताकि प्रसव के बाद होने वाली समस्या जैसे जेर अटकना, थनेला रोग इत्यादि की समस्या न हो।

भैंस में यदि दर्द शुरू हो गये हैं तथा लगभग 4–6 घंटे की कोशिश के बाद भी बच्चा बाहर नहीं आ रहा है तो पशु चिकित्सक को तुरंत बुला लेना चाहिए।

प्रसव के बाद गाभिन भैंसों की देखभाल

प्रसव के बाद भैंस की देखभाल में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- पिछले हिस्से व अयन को धोकर, एक–दो घंटे के अंदर बच्चे को खीस पिला देनी चाहिए।
- आमतौर पर भैंस ब्याने के बाद 2–8 घंटे में जेर गिरा देती है। यदि योनि के आस–पास खरोंच या फटने के निशान हैं लाल दवाई आदि का घोल लगा देना चाहिए।
- भैंस को गुड़, मेथी, चोकर, दलिया तथा हरा चारा खाने को देना चाहिए। उसे ताजा या हल्का गुनगुना पानी पिलाना चाहिए।

ऊपर बताया गया संतुलित आहार सूखे और हरे चारे के साथ पशु को खिलाया जाना चाहिए। गर्भावस्था के दौरान किसी भी प्रकार की खान–पान व रख–रखाव में कमी रहने पर पशुओं में निम्नलिखित परेशानियां हो सकती है–

- अस्वस्थ व कमजोर बच्चा पैदा होना
- भैंस में फूल या शरीर दिखने की समस्या
- ब्याने के तुरंत बाद दुग्ध ज्वर सुन्पात की समस्या
- ब्याने के तुरंत बाद जेर रुकने की समस्या
- बच्चेदानी में संक्रमण हो सकता है

इन सभी बातों का ध्यान रखने पर पशुपालक अपनी भैंस से हर वर्ष एक स्वस्थ कटड़ा या कटड़ी प्राप्त कर सकता है व अपने डेयरी फार्म में अच्छा उत्पादन बनाये रख सकता है।

पशुओं में महामारी प्रकोप को नियंत्रित करने के लिए प्रारंभिक कदम

जसलीन कौर[1] एवं गौरव चराया[2]

[1]पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान व [2]पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुधन उत्पादन में वृद्धि को बढ़ाने के लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जिसमें से महामारी प्रकोप एक मुख्य चुनौती है। इसके चलते कई बार पूरा का पूरा फार्म खत्म हो जाता है और किसान को आर्थिक व मानसिक तनाव भी सहना पड़ता है। महामारी प्रकोप का जितना जल्दी नियंत्रण किया जाए उतना अच्छा होता है। आमतौर पर किसान भाई को बीमारी के बढ़ते प्रकोप का पता रहता है और वह पूरा संभव प्रयास करता है कि बीमारी का फैलाव न हो और उसपे काबू पाया जा सके। परन्तु घातक व संक्रामक बीमारियां बड़ी तेजी से बाड़े में फैलती हैं और पूरे पशुधन को प्रभावित करती हैं। ऐसे में जरूरी है कि किसान भाई को पता रहे कि ऐसी अवस्था में क्या–क्या सावधानियां बरतनी चाहिएं। इस लेख में हमने कुछ इन्हीं सावधानियों व रणनीतियों का विवरण किया है।

1. रोगी पशु को स्वस्थ पशु से अलग करना

सबसे पहला और सबसे जरूरी कदम जो किसान भाई अपने पशुओं को बीमारी के प्रकोप से बचाने के लिए कर सकता है वह है कि बीमार पशु को स्वस्थ पशु से अलग करे ताकि बीमारी स्वस्थ पशुओं में न फैले। पशुओं की ज्यादातर बीमारियां संक्रामक होती हैं और वह एक पशु से दूसरे पशु में बड़ी तेजी से फैलती हैं। जैसे गल घोटु रोग, जिसमें मृत्युदर काफी ज्यादा होती है और किसान भाई के देखते ही देखते सभी पशु रोग से ग्रसित हो जाते हैं। ऐसे में अगर हम बीमार पशु के लक्षणों को पहचान कर बीमार पशु को स्वस्थ पशु से अलग कर दें तो स्थिति पर काबू पाया जा सकता है।

गौरतलब है कि पशु को अलग करने का मतलब सिर्फ पशु को अलग बाड़े में रखने से नहीं है इसका सही अर्थ यह है कि पशु की देखभाल भी अलग इंसान करे, उनके चारे और पानी की भी व्यवस्था अलग से हो और जो बर्तनों का प्रयोग बीमार पशु को नहलाने या दूध निकालने में किया जाता हो वह भी अलग होने चाहिए।

2. बीमार व स्वस्थ पशुओं के आवागमन पर रोक लगाना

वैसे तो ज्यादातर किसान भाई अपने पशुओं को चारा बाड़े में ही डालते हैं पर अगर कोई किसान भाई अपने पशुओं को चारे के लिए बाहर घुमाने के लिए लेके जाता है तो महामारी के समय उसे अपने पशुओं को बाहर नहीं लेके जाना चाहिए। ऐसा करने से स्वस्थ पशु बीमारी से बचे रहेंगे। बीमारी प्रकोप के चलते हमें अपने पशुओं को बिक्री और खरीद के लिए मेले में नहीं लेके जाना चाहिए।

3. पशुओं का वातावरण स्वच्छ होना चाहिए

संक्रामक रोगों को रोकने के लिए स्वच्छ वातावरण की आवश्यकता होती है और बीमारी के प्रकोप के समय स्वच्छता का खास ध्यान रखना चाहिए। गोबर और मलबे की उचित तरीके से निकासी करनी चाहिए चाहिए और पशुओं के बाड़े की पूरी तरह से सफाई और कीटनाशक का स्प्रे करना चाहिए। प्रकोप के समय बाहरी लोगों के प्रवेश को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए क्योंकि वे रोगवाहक का काम कर सकते हैं और बीमारी के फैलाव में अहम् भूमिका निभा सकते हैं। अगर किसी जानवर की मृत्यु हो जाती है तो शव को पोस्टमार्टम परीक्षा के बाद धरती में दफन कर देना चाहिए और उसके ऊपर नमक की परत और चूने की मोटी परत डालनी चाहिए।

4. विषाक्त फीड्स, चारा, पानी और कीटनाशकों द्वारा दूषित पदार्थों को बाड़े से बाहर करना

विषाक्त फीड्स, चारा, पानी और कीटनाशकों द्वारा दूषित पदार्थों के कारण प्रकोप आ सकता है। ऐसे सभी प्रकोपों को जहरीले चारा या जहरीला पीने के पानी को पशु को न देने से प्रकोप को नियंत्रित किया जा सकता है।

5. समय पर टीकाकरण

बीमारी के प्रकोप में भारत में टेस्ट एंड स्लॉटर नीति

नहीं अपनायी जाती ऐसे में उपचार और टीकाकरण एकमात्र विकल्प रह जाता है। जैसे F.M.d. के प्रकोप के समय रिंग टीकाकरण का इस्तेमाल किया जाता है जिसमें बीमारी के प्रकोप के लगते सारे इलाके के पशुओं का टीकाकरण किया जाता है ऐसे करने से बीमारी बाहर नहीं फैलती और उसपे काबू पाया जा सकता है।

6. बीमार पशुओं का इलाज (कीमोथेरपी)

बीमार पशु को बाकि पशुओं से अलग कर देना चाहिए ताकि रोग एक से दूसरे जानवर में न फैले। एंटीबायोटिक दवाओं, अन्थेलमिंटिक्स और अन्य दवाइयों का प्रयोग बीमार जानवरों को ठीक करने के लिए तथा बीमारी के नियंत्रण के लिए कर सकते हैं।

7. बीमारी की रिपोर्टिंग उच्च अधिकारियों को तुरंत करनी चाहिए

अधिकारी बीमारी जांच विशेषज्ञों या एपिडेमीओलॉजिस्टों को भेजेगा जो रोगों की पुष्टि या इनकार कर सकते हैं। ऐसा करने से रोग के वैज्ञानिकों को रोग की उत्पत्ति का पता लगाने में सक्षम बनाता है ताकि आगे फैलाव को रोका जा सके। वैज्ञानिक रोग के प्रकोपों के विस्तृत अध्ययन, इसके फैलाव से जुड़े कारणों का भी अध्ययन करता है ताकि भविष्य में इसी तरह के प्रकोप को रोका जा सके।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

देश में अश्वों की विभिन्न नस्लें

वैशाली

पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग

लाला लाजपतराय पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

अश्व (इक्टसफेरस कैबलस); इक्कसफेरस की दो विलुप्त उप–प्रजातियों में से एक है। यह टैकसोनॉमिक फैमिली इक्केडे से संबंधित एक विषम पंजेवाला असमान स्तनपायी है। मनुष्यों ने 4000 ईसा पूर्व के आसपास घोड़ों का घरेलूकरण करना शुरू कर दिया था, और माना जाता है कि उनके संप्रभुत्व 3000 ईसा पूर्व तक व्यापक था। उप प्रजाति कैबेलस में घोड़ों को पालतू बनाया जाता है, हालांकि कुछ घरेलू आबादी जंगली घोड़ों के रूप में रहती है। ये जंगली आबादी घोड़े नहीं है, क्योंकि इस शब्द का इस्तेमाल उन घोड़ों का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जो कमी पालतू नहीं बने होते हैं, जैसे लुप्तप्रायः प्रेजवल्स्की का घोड़ा, एक अलग उप–प्रजाति और केवल शेष सच्चे जंगली घोड़े। घोड़ो की कई नस्ले हैं और उन्हें निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है–

मारवाड़ी

स्रोत– विकिमीडिया कॉमन्स से

जन्म स्थान– राजस्थान का मारवाड़ क्षेत्र

प्रमुख पहचान

- इन अश्वों के कान बड़े तथा अंदर की तरफ मुड़ने पर आपस में मिलते हुए प्रतीत होते हैं। चेहरा लम्बा, नाक के ऊपर का भाग थोड़ा उभरा हुआ या फिर चपटा होता है।
- मुख्यतः बादामी, गहरे बादामी, काले, भूरे लाल, सफेद व काले–सफेद रंग के होते हैं।
- ऊँचाई लगभग 14–15 मुट्ठी (140–150 सेंटीमीटर) तथा शारीरिक भार 340–454 किलोग्राम के बीच होता है।

विशेषता एवं उपयोग

- यह अश्व प्रायः चुस्त, सुंदर व शांत प्रवृति के होते हैं और अपनी तेज चाल और मजबूती के लिए प्रसिद्ध है।
- मुख्यतः खेलों, घुडदौड़, सफारी व घुड़सवारी आदि कार्यों में काम आते हैं।

काठियावाड़ी

स्रोत– विकिमीडिया कॉमन्स से

जन्म स्थान– गुजरात का कठियावाड़ क्षेत्र

प्रमुख पहचान

- यह घोड़े अधिकतर भूरे व मिलते–जुलते रंग, धुंधला काले रंग व स्लेटी रंग के होते हैं।
- चेहरा चौड़ा, जबड़े की हड्डी का 90 डिग्री के कोण पर मुडा होना, नाक के छिद्र चौड़े तथा कानों के बीच का भाग (पोल) संकरा होता है।

- ऊँचाई लगभग 13–15 मुट्ठी (130–150 सेंटीमीटर) तथा शारीरिक भार औसतन 275 किलोग्राम की मादा व 325 किलोग्राम का नर होता है।

विशेषता व उपयोग

- यह अश्व शक्तिशाली व अपनी तेज चाल, मजबूती और प्रतिकूल परिस्थितियों में कार्य करने की क्षमता के लिए प्रसिद्ध है।
- मुख्यतः खेलों, घुड़सवारी, घुड़दौड़, सुरक्षा व सफारी में काम आते हैं।

जांसकारी

स्रोत– विकिमीडिया कॉमन्स से

जन्म स्थान– जम्मू कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में जांसकार

प्रमुख पहचान

- शुद्ध जांसकारी टट्टू भूरा–श्वेत होता है।
- पूँछ लम्बी व लगभग जमींन तक पहुंचती है।
- ऊँचाई लगभग 12–14 मुट्ठी (120–140 सेंटीमीटर) होती है।
- शरीर गठा हुआ, मस्तक चौड़ा व काठी मजबूत होती है।

विशेषता एवं उपयोग

- यह टट्टू चैतन्य दिखाई देते हैं और दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में 20 से 30 डिग्री तापमान में रहने के सक्षम होते हैं।
- पहाड़ी क्षेत्रों में यातायात, सामान ढुलाई, सवारी व खेलों में प्रयोग लाया जाता है।

मणिपुरी

जन्म स्थान– मणिपुर एवं आसाम प्रदेश

प्रमुख पहचान

- यह 14 विभिन्न रंगों में पाए जाते हैं जैसे काला, स्लेटी, भूरा आदि।

स्रोतः icar.org.in

- ऊँचाई लगभग 11–13 मुट्ठी (110–130 सेंटीमीटर) तथा शारीरिक भार लगभग 300 किलोग्राम होता है।

विशेषता एवं उपयोग

- पोलो खेल के लिए उत्तम माने जाते हैं एवं सुन्दरता व गति के लिए प्रसिद्ध हैं।
- मुख्यतः यातायात, सामान ढुलाई, सवारी व पोलो खेल हेतु काम आते हैं।

भूटिया

स्रोतः https://www.horsebreedspictures.com/bhutia-horse.asp

जन्म स्थान– भारत में पंजाब तथा भूटान में हिमाचल पर्वत के निचले क्षेत्र

प्रमुख पहचान

- यह टट्टू प्रायः भूरे, बादामी व चितकबरे रंग के होते हैं।

- ऊँचाई लगभग 13.0–13.2 मुट्ठी (130–132 सेंटीमीटर) तथा शारीरिक भार औसतन 260 किलोग्राम की मादा व 345 किलोग्राम का नर होता है।

विशेषता एवं उपयोग

- यह टट्टू पहाड़ी व ठन्डे क्षेत्रों में रहने में सक्षम है।
- मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्रों में सवारी करने तथा बोझा ढोने के काम आते हैं।

स्पीति

स्रोतः https://www.horsebreedspictures.com/spiti-horse.asp

जन्म स्थान– हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले के कुल्लू की स्पीति घाटी

प्रमुख पहचान

- यह टट्टू गहरे स्लेटी, काले व लाल भूरे होते हैं व क्रीम रंग भी यदा–कदा पाया जाता है।
- हड्डियाँ मजबूत, देह सुविकसित व टांगों पर लम्बे बाल होते हैं।
- ऊँचाई लगभग 12 मुट्ठी (120 सेंटीमीटर) एवं शारीरिक भार औसतन 160 किलोग्राम की मादा व 185 किलोग्राम का नर होता है।

विशेषता एवं उपयोग

- यह टट्टू ठन्डे भागों में रहने में सक्षम है तथा प्रतिकूल परिस्थिति जैसे चारे की कमी व लम्बी यात्रा के सहनशील होते हैं।
- मुख्यत जल्दी नहीं फिसलने के कारण पहाड़ी व दुर्गम क्षेत्रों में आसानी से चलने व बोझा ढोने के लिए उत्तम माने जाते हैं।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

एनाप्लास्मोसिस घातक रिकेटसीएल रोग

जसलीन कौर[1] एवं गौरव चराया[2]

[1]पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान व [2]पशु औषधि विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

एनाप्लास्मोसिस गौ वंशियों में रिकेटसीएल परजीवी से होने वाला अति सक्रामक रोग है। इस रोग में मुख्यतः तेज बुखार, पीलिया की शिकायत व खून में कमी देखी जाती है।

रोग का कारण व कैसे फैलता है?

यह बीमारी कई प्रकार के चिचड़ जिसमे एनाप्लास्मा मार्जिनल नाम का रिकेटसिआ परजीवी हो उसके काटने से फैलती है। इस रोग के मुख्य लक्षण तीव्र बुखार, पीलिया, दूध उत्पादन में कमी, अति उत्तेजना व खून की कमी हो जाती है। इस रोग में कभी कभी खून की कमी के चलते एक दम से मृत्यु भी हो जाती है।

कौन–सा पशुधन प्रभावित होता है?

यह बीमारी गायों में भैंसों के मुकाबले ज्यादा प्रभाव डालती है। यह रोग भेद व बकरियों में भी पाया जा सकता है।

रोग का पशु की उम्र से गहरा नाता

यह रोग आमतौर पर बड़े पशु में ही पाया जाता है और बछड़े इस रोग से कम प्रभावित होते हैं। एक वर्ष से कम आयु वाले पशुओं में यह बीमारी उपनैदानिक रूप में होता है। जहाँ लक्षण भी कम दिखाई पढ़ते है और रोग का असर भी कम होता है। दो साल से ऊपर वाले पशुओं में रोग गंभीर रूप में पाया जाता है और जैसे–जैसे पशु की उम्र बढ़ती है, वैसे–वैसे रोग की तीव्रता भी बढ़ती है।

रोग में करियर अवस्था का होना

इसमें जब पशु की बीमारी का इलाज किया जाता है तब पशु ठीक हो जाता है। परन्तु उसमे यह रिकेटसिआ रह जाता है। ऐसी अवस्था को करिएर अवस्था कहा जाता है बीमारी से नुकसान तब सबसे ज्यादा होता है, जब बड़े पशु बीमारी से पहली बार ग्रसित होते हैं।

रोग के प्रमुख लक्षण

इस रोग का सबसे मुख्य लक्षण खून की कमी होना। जिससे पशु में कमजोरी आ जाती है, पशु सुस्त हो जाता है व खाना–पीना भी छोड़ देता है।

अति तीव्र रूप में पशु ज्यादा समय नहीं निकाल पाता और उसकी मृत्यु लक्षण आने के 5–6 घंटों के बीच हो जाती है।

तीव्र रूप में पशु कमजोर हो जाता है, उसके दूध उत्पादन में भी गिरावट आ जाती है। 106 डिग्री तक का बुखार देखा जाता है। आँखों की झिली का रंग फीका पड़ जाता है और ज्यादा बीमार पशुओं में पीलिया हो जाता है।

रोग की पहचान व पुष्टि

1. पशुओं में लक्षणों को देखकर
2. लेबोरेटरी में खून की जाँच से जिसमें खून परजीवी एनाप्लास्मा आर.बी.सी. के अंदर मिलता है। इस परजीवी की पहचान होते ही रोग की पुष्टि की जा सकती है।
3. उपनैदानिक रूप की जाँच खून की स्लाइड देखकर करना मुश्किल होता है क्योंकि ऐसी अवस्था में खून में परजीवी की मात्रा कम होती है। साथ ही रोग के लक्षण भी कम आते हैं। ऐसे में रोग की पुष्टि के लिए मॉलिक्यूलर टेस्ट का सहारा लिया जा सकता है।

इस घातक बीमारी से किसान भाई कैसे बचे व ध्यान रखें?

किसान भाइयों के लिए यह समझना जरूरी है कि कैसे पता रहेगा कि उनके पशु में खून की कमी हो रही है। इसके कुछ लक्षण हैं जिसमें सुस्त होना, साँस लेने में तकलीफ होना, पशु में थकावट महसूस करना है। पर किसान भाई झीली का रंग देखकर भी अंदाजा लगा सकता है।

आमतौर पर आँखों की झीली का रंग हल्का गुलाबी

व भैंसों में गाड़ा लाल रंग होता है। अगर किसान भाई को लगे के रंग में बदलाव है और तेज बुखार भी है तो इस रोग को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

इलाज

इस रोग का इलाज संभव भी है और प्रारंभिक निदान के उपरांत अगर इलाज सही समय पर किया जाये तो पशु को बचाया जा सकता है। बीमारी के प्रारंभिक लक्षणों को देखते ही पशुपालक को अपने निकट के पशु चिकित्सालय या डॉक्टर से संपर्क करना चाहिए।

रोकथाम व बचाव

वर्षा ऋतु में चिचड़ का प्रकोप बढ़ता है जिसके उपरांत इस रोग का भी प्रकोप बढ़ जाता है। ऐसे में रोग के बचाव के लिए जरूरी है कि किसान भाई बाड़े की साफ–सफाई रखें, कीटनाशक दवाइओं से फर्श व बाड़े की धुलाई करें। अगर कोई दिवार में दरारें हैं तो उन्हें भरवाएं क्योंकि यही चीचड़ों के प्रजनन स्थान होते हैं।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

नवजात बछड़ों की देखभाल

रोबिन[1], सुजॉय खन्ना[3] एवं देवेन्द्र सिंह[2]

[1]पशु चिकित्सक, हरियाणा सरकार, [2]हरियाणा पशु विज्ञान केन्द्र महेन्द्रगढ़,
[3]विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार

गाय के ब्याने/बछड़ा जनने के बाद गाय को अपने बछड़े को चाटने का पूरा मौका देना चाहिए ताकि वह सूख जाए। वह आराम से सांस ले सके इसका भी इंतजाम किया जाना चाहिए। अगर गाय अपने नवजात बछड़े पर ठीक से ध्यान न दे रही हो तो एक साफ और नर्म तौलिये से उसकी नाक और मुंह में जमा श्लेष्मा वाले सारे पदार्थ को पूरी तरह निकाल देना चाहिए। जितना जल्द बछड़ा सूख जाएगा उसे सर्दी लगने की आशंका उतनी ही कम हो जाएगी, खास तौर पर सर्दी के मौसम में।

नाक और मुंह से श्लेष्मा युक्त पदार्थ के निकलने ही बछड़ा सांस लेना शुरू कर देगा। अगर वह सांस लेना प्रारंभ नहीं करता तो उसे करवट से लिटा कर हाथों से बारी–बारी से उसके सीने को दबाकर और छोड़कर कृत्रिम सांस दी जानी चाहिए।

बछड़े की नाभिनाल पर टिंक्चर आयोडीन लगाकर बोरिक एसिड पाउडर का छिडकाव कर देना चाहिए। अगर नाभि से जुड़ी नाल बहुत लम्बी हो तो इसे काट कर सिर्फ 2 इंच का कर देना चाहिए और इसके बाद उस पर टिंक्चर आयोडीन लगा देना चाहिए। नाभिनाल को बांधना नहीं चाहिए बल्कि खाली होने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। सामान्य स्थितियों में नवजात बछड़ा पैदा होने के एक घंटे बाद ही खड़ा हो जाएगा और अपनी मां का स्तनपान करने लगेगा। इस वक्त उसे कुछ मदद की आवश्यकता होती है। अगर देखभाल करने वाला मां का दूध पीना शुरू करने से पहले गाय के थनों की सफाई कर दे तो उसे संक्रमण से काफी हद तक बचाया जा सकता है।

बछड़ों को पैदा होने के कम से कम 48 घंटों में मां का पहला गाढ़ा दूध यानी खीस (कोलोस्ट्रम) पीने देना चाहिए। इस दूध में मौजूद एंटीबॉडी बछड़े को बीमारियों से बचाती हैं और उसे गोबर करने में मदद करती हैं। बछड़ों को उनके वजन के 10 प्रतिशत के बराबर दूध रोजाना पीने को मिलना चाहिए। इसकी अधिकतम मात्रा 5–6 लीटर दैनिक तक हो सकती है। नवजात बछड़ों के पालन–पोषण का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उन्हें शुरूआत के कुछ हफ्तों तक उनके लिए अलग से बनाए गये बाड़े में रखा जाए ताकि उन पर अधिक ध्यान दिया जा सके। चार सप्ताह का हो जाने पर उसे समूह के साथ रख देना चाहिए।

ब्यांत के बाद रिकार्ड रखने के उद्देश्य से गाय और उसके बछड़े का वजन मापा जाना चाहिए। जन्म के 5–10 दिन बाद ही बछड़े की पहचान के लिए उसके कान पर पहचान चिपकी लगा देनी चाहिए। बछड़ों के सींग हटाने का काम शुरू में ही कर देना चाहिए (इसे जन्म के 10–15 दिन के भीतर कराना अच्छा होता है)।

कोलोस्ट्रम के फायदे

अगर कोई गाय ब्यांत से पहले ही दूध देना शुरू कर देती है तो उसकी खीस को अत्यंत कम तापमान पर फ्रीज स्टोर करने के लिए रख देना चाहिए और बाद में बछड़े को दिया जाना चाहिए। इसको बरबाद नहीं करना चाहिए। कोलोस्ट्रम की पचने की क्षमता 99–102 डिग्री फारेनहाइट तापमान पर बढ़कर सर्वोच्च स्तर पर पहुंच जाती है। कोलोस्ट्रम के महत्व को दर्शाने वाली कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं:

1. कोलस्ट्रम के प्रोटीन में सामान्य दूध के मुकाबले कहीं ज्यादा अनुपात में ग्लोब्यूलिन प्रोटीन पाया जाता है। ग्लोब्यूलिन में एंटीबाडीज पायी जाती हैं जो नवजात बछड़े को कई तरह के संक्रमण से बचाती हैं।
2. कोलस्ट्रम में प्रोटीन की मात्रा सामान्य दूध के मुकाबले 3 से 5 गुना ज्यादा होती है। इसमें आयरन, कॉपर, मैग्नीशियम और मैंगनीज जैसे खनिज भी पाये जाते हैं।
3. कोलस्ट्रम में सामान्य दूध के मुकाबले 5–15 गुना ज्यादा विटामिन–ए पाया जाता है। गाय को खुश्क मौसम में खिलाये गये आहार की गुणवत्ता के अनुसार उसके कोलस्ट्रम में विटामिल–ए की मात्रा बढ़ती है।
4. कोलस्ट्रम दूध से इस दृष्टि से भी श्रेष्ठ है कि इसमें काफी बड़ी मात्रा में राइबोफ्लेबिन, कोलाइन, थियामिन और पेंटोथेनिक जैसे कई ऐसे विटामिन पाये जाते हैं जिन्हें बछड़ों के शारीरिक विकास के लिए अनिवार्य माना जाता है।
5. कोलस्ट्रम पाचन प्रणाली में फंसे पदार्थों को बाहर निकालने वाले रेचक का कार्य करता है।

CELEBRATING DR. KURIEN
HARYANA PASHU VIGYAN KENDRA, KARNAL
NATIONAL
Milk
DAY
26 NOVEMBER
Directorate of Extension Education

JHAJJAR HARYANA

पशुपालन से आमदनी को करें दोगुना : छात्रा

छात्र वांछ में 6 दिवसीय ट्रेनिंग शिविर, 50 महिलाओं ने लिया हिस्सा

भेड़, बकरी पालन से आय बढ़ाने की दी गई जानकारी

विश्व जूनोटिक दिवस पर पशुओं को बीमारी से बचाने के टिप्स दिए

राष्ट्रीय दुग्ध दिवस

आत्मनिर्भर बन दूसरों को दिखाया आइना

दुग्ध उत्पादन व आमदनी बढ़ाने के दिए टिप्स

पशु अस्पताल में रेबीज टीकाकरण शिविर आज

पशुपालकों को पशुओं में बांझपन की समस्या से निदान की दी जानकारी

50 महिलाओं को दी पशुओं के बारे में जानकारी

डेरी फार्मिंग से व्यक्ति कर सकता है आमदनी दोगुना

पशुपालकों को बाजार से आधे रेट पर वितरित किया खनिज मिश्रण

वैज्ञानिकों ने किसानों को बताए पशुपालन के तरीके

पशुओं में बांझपन दूर करने में खनिज मिश्रण ज्यादा सहायक

महिलाओं को दी पशुओं में खानपान और खनिज मिश्रण की जानकारी

गारनपुरा में लगाया पशु चिकित्सा शिविर

महिलाओं को पशुपालन से आय दोगुने करने के तरीके बताए

पशुओं के रख रखाव के बारे में विशेषज्ञों ने दिए टिप्स

कुत्तों को लगाया गया एंटी रेबीज का टीका

पारम्परिक नहीं वैज्ञानिक तरीके से बकरी पालन करें

सिरोही नस्ल की बकरियां दें सकती हैं ज्यादा मुनाफा